मार्च 2015

वार्षिक मूल्य ₹ 150

साधन

संस्थापक : समर्थ गुरु परम संत डा. चतुर्भुज सहाय जी

ॐ

रामाश्रम सत्संग, मथुरा

ॐ

साधन

मार्च-2015

अनुक्रमणिका

ॐ

साधन

वेद-मंत्र

त्वम् ओदनं प्राशीः३त्वाम् ओदना३इति।

— अथर्व वेद 11/3/27

विचार कर देख ! तू भोगों को भोग रहा है या भोग तुझे भोग रहें हैं? हे मानव तू जाग।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

वर्ष : 82 अंक : 8	मार्च-2015	वार्षिक मूल्य : ₹ 150.00 इस अंक का : ₹ 16.00

-: विनय :-

यह विनती रघुवीर गुसाईं।
और आस विश्वास भरोसो, हरौ जीव जड़ताई।।
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग राम पद, बढ़ै अनुदिन अधिकाई।।
कुटिल करम लै जाई मोंहि, जहँ-जहँ अपनी बरिआई।
तहँ-तहँ जनि छिन छोह छाँड़िये कमठ अंड की नाईं।।
या जग में जहँ लगि या तनु की, प्रीति-प्रतीति-सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिट एक ठाईं।।

— संत श्री तुलसी दास जी

अमृत बिन्दु :-

गुरु बिन होय न ज्ञान

– परमपूज्य श्री गुरुदेव जी

यह ब्रह्माण्ड पाँच भागों में विभक्त है । वेदान्त की भाषा में इसको '(1) अन्नमय कोश, (2) प्राणमय कोश (3) मनोमय कोश (4) विज्ञानमय कोश और (5) आनन्दमय कोश' कहते हैं । इनमें अन्नमय कोश सबसे निचला और आनन्दमय कोश सबसे ऊँचा स्थान है । इस आनन्दमय कोश का दूसरा नाम सत्लोक है । जीव की स्थिति किसी समय सत्लोक में थी । उस समय वह आनंद की अमृतमयी धाराओं का रस पान करता हुआ शान्त और सुखी था । पर प्रकृतिमाता के रजोगुणी और तमोगुणी धक्कों से वह अपने निजी स्थान से च्युत हो गया और नीचे को गिरने लगा ।

यह दशा उसकी यहाँ तक बढ़ी कि खिसकते-खिसकते अन्नमय कोश में आ गया यहाँ आकर ठहर गया और दु:ख-सुख झेलने लगा । इस कोश में अधिकतर दु:ख ही दु:ख हैं, सुख की कभी-कभी भासना होती है, परन्तु वास्तव में है नहीं । विवेक शून्य प्राणी तो अपनी अज्ञानता वश इस दु:ख से छूटने का उपाय ही कभी नहीं सोचते । खाना, पीना, सोना और उदरपूर्ति के लिए कोई धन्धा करना ही उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझ रखा है और उनके विचार से सुख प्राप्ति के साधन केवल इतने ही हैं । इसके आगे और दुनिया की उन्हें खबर ही नहीं है । यह सब अन्नमय कोश के प्राणियों का हाल है ।

अत्यन्त दु:खों से पीड़ित इस अन्नमय कोश के प्राणी को जब ईश्वरीय अनुग्रह से इस बात की समझ आती है कि वह इस लोक में रहते हुए कभी सुखी नहीं रह सकता, तब वह विषयानन्द को तुच्छ समझता हुआ अपने लिए सुख के साधन तलाश करने लगता है । अनन्य खोज करने पर और सच्ची जिज्ञासा होने पर उसकी मुलाकात किसी ऐसे मनुष्य से होती है कि जो उसको उपदेश करता है कि सुख और शान्ति का धाम ऊपर है । तुम उर्ध्व गति (उसकी चढ़ाई) के द्वारा वहाँ पहुँचने का यत्न करो और वह उनके कथनानुसार उधर को चलने लगता है, यह उसका प्रथम गुरु हुआ कि जिसने उस मार्ग पर उसको लगाया ।

यदि हमारा उपदेष्टा (प्रथम गुरु) अन्त तक के मार्गों का ज्ञाता है तो हमको किसी दूसरे सहायक की आवश्यकता नहीं होती वरना आगे चलकर किसी अन्य मनुष्य का सहारा लेना होता है और यह हमारा द्वितीय गुरु हो जाता है ।

इस प्रकार लगातार चढ़ाई करते हुए एक न एक दिन हम उस अन्तिम स्थान में पहुँच जाते हैं जिसको सत्लोक कहा जाता है और वहाँ सुख ही सुख है । वहाँ पहुँच कर हमको मुक्ति के तीन दर्जे प्राप्त होते हैं जिनको शास्त्रों की भाषा में 'सालोक्य'

'सामीप्य' और 'सारूप्य' मुक्ति कहते हैं । परन्तु वह सब भी माया के अन्दर का ही खेल है । यहाँ भी बन्धन रहता है । असली मुक्ति इन सबसे परे है जिसका नाम 'सायुज्य' है ।

गुरु, सद्गुरु और समर्थ गुरु

जो साधक विज्ञानमय कोश तक पहुँच कर दूसरों को उपदेश देना प्रारम्भ कर देता है उसको 'गुरु' कहते हैं । और जो सत्‌लोक (आनन्दमय कोश) तक पहुँचकर अन्य प्राणियों के उद्धार का प्रयत्न करता है उसे सद्गुरु कहते हैं । और जो माया से परे तद्रूपता प्राप्त कर जीवन मुक्त हो जाता है, ब्रह्म की सारी शक्तियों पर जिसका अधिकार हो जाता है, प्राणियों का उद्धार करना तथा उनको पतित करना जिसके बायें हाथ का खेल होता है, ऐसे अनन्त शक्तिशाली महापुरुष को 'समर्थ गुरु' कहते हैं । शास्त्रीय अथवा पुस्तकीय ज्ञान देने वाला गुरु नहीं होता बल्कि अध्यापक होता है ।

समर्थ गुरु का सहारा पकड़े बिना मुक्ति नहीं

मोक्ष या मुक्ति ऐसे समर्थ गुरु का सहारा पकड़े बिना नहीं हो सकती । इसके दो कारण हैं, और वे यह हैं कि मनुष्य जब बिना किसी समर्थ का आश्रय लिये हुए 'साधन और तप' के बल से उधर को चलने लगता है तो माया सिद्धि और शक्ति का मोहिनी रूप धारण करके उस पर आक्रमण करती है उस समय यदि उसका बचाने वाला उसके साथ नहीं होता तो वह उसके प्रलोभन में फंस जाता है और थोड़े ही दिनों में अहंकारी बन पतित हो जाता है ।

खुदा और इन्सान के बीच में खुदी का पर्दा है । खुदी (अंहकार) दूर कर दो, खुदा तुम्हारे सम्मुख हो तुम्हें दिखाई देगा । मनुष्य स्वयं ही जब अभ्यास करता है तो वह अंहकारी बन जाता है । यह अहंकार भक्तों को भक्ति का, योगियों को योग का, तपस्वियों को तप का, सन्यासियों और विरक्तों को वैराग्य का, ज्ञानियों को ज्ञान का उत्पन्न हो जाता है । हृदय में अहंकार का अंकुर उदय होते ही ठोकर लगती है और वह गिर पड़ता है, क्योंकि भगवान को गर्व अच्छा नहीं लगता, भगवान गर्व प्रहारी प्रसिद्ध हैं । योग्य गुरु उनमें अहंकार नहीं उत्पन्न होने देता, हमेशा उसकी उस नस को दबाये रहता है कि जिसके द्वारा अहंकार के पौधे को पानी मिलता है । इसीलिए बिना गुरु के मुक्ति नहीं हो सकती क्योंकि जिस वस्तु को दूर हटा कर हम शुद्ध और निर्मल बनना चाहते थे, वही सूक्ष्म बनके हमारी देही में ऐसी चिपटी कि जिसकी हमको खुद भी खबर नहीं है । दिव्य दृष्टि वाला पुरुष हमारे नुक्स देखता है और उसका इलाज करता है । तात्पर्य यह है कि जैसे ऊँट पहाड़ के तले पहुँचे बगैर अपने को ही सबसे ऊँचा ख्याल करता रहता है, वैसे ही ये सब कर्मी और योगी भी अभिमान में चूर अपने को विचित्र पुरुष समझने लगते हैं, जब तक किसी महापुरुष के सम्मुख न जायँ । सद्गुरु अपने शिष्य की बुद्धि में ऐसा विकार कभी नहीं उत्पन्न होने देगा, बस इसीलिए गुरु की सहायता की आवश्यकता है । भगवद् भजन से इस प्रकार के समर्थ गुरु हमको जल्दी प्राप्त हो जाते हैं । यह भजन का फल होता है ।

यह एक बात हुई, अब दूसरी बतलाते हैं जो केवल अनुभव से सम्बन्ध रखती है, और जिसके जानने वाले साधू महात्माओं में भी कम मिलते हैं ।

सत्लोक का स्थान बड़ा ही ढलवाँ और ऐसा फिसलना है कि जिस पर पाँव टेकना और चढ़ना अति दुर्लभ है, जिस पर भी प्रकृति की धार बड़े ही तीव्र वेग के साथ ऊपर से गिरकर नीचे बह रही है । नदी जब अपने भण्डार से निकल कर बाहर आती है तो थोड़ी दूर तक उसकी तीव्रता बहुत अधिक रहती है जैसा कि पहाड़ी नदियों में देखा जाता है कि एक फुट जल होने पर भी वह आदमी को टिकने नहीं देती, उसी प्रकार यहाँ प्रकृति रूपी तीव्र गामिनी सुरसरी की धारा ऊपर से नीचे की ओर आ रही है । निर्बल और अल्पज्ञ प्राणी उसके धक्के को नहीं सहन कर सकता और नीचे फिसल जाता है ।

जैसे एक सीधा और चिकना पर्वत हो, उसके ऊपर से बड़े जोर के साथ जल की धारा आ रही हो, कोई मनुष्य उस जल धारा को काटता हुआ पहाड़ की चोटी पर चढ़ना चाहता हो तो जैसे उसके लिए यह चढ़ाई नामुमकिन है, वैसे ही सत्लोक में अपनी सामर्थ से चढ़ जाना असम्भव है । विज्ञानमय कोश तक तो मनुष्य अपने आप चढ़ाई करके पहुँच जाता है परन्तु इस स्थान में उसकी कोई शक्ति काम नहीं देती, उसका अहंकार चूर हो जाता है, उसकी तपस्या और उसका ज्ञान यहाँ कुछ सहारा नहीं देता । उस समय वह गीता के अठारहवें अध्याय का उपदेश याद कर भक्त भय हारी प्रभु की शरण जाता है, आरत होकर उन्हें पुकारता है, उसी समय भगवान समर्थ गुरु का रूप धारण कर एक रस्सा ऊपर से फैंकते हैं और कहते हैं, मत घबड़ाओ मैं सब दु:खों (पापों) से तुमको मुक्त कर दूँगा, तुम मेरे आश्रय रहकर इस रस्से को मजबूती से पकड़ लो । यह माया का अन्तिम स्थान है, यहाँ से बिना मेरी कृपा के कोई पार नहीं हो सकता, जिसको मैं चाहूँ पार लगा दूँ और जिसको मैं चाहूँ नीचे ढकेल दूँ । यदि तू यहाँ आना चाहता है तो सिवाय इसके कोई उपाय नहीं है कि—

''सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।''
''मन्मना भव मद भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामे वैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोऽसि मे।।''

अर्थ- सब काम छोड़ के तू मेरी शरण चला आ, मुझमें ही मन लगा, मेरा ही भक्त बन, मेरा ही भजन कर, मुझे ही दण्डवत कर, ऐसा करने से तू मुझमें ही आ मिलेगा अर्थात् इस माया रूपी बंधन से मुक्त हो जायेगा ।

जब गुरुदेव की इस बात पर विश्वास करता हुआ और इस 'समर्पण योग का सहारा लेता हुआ अपना मिथ्या अहंकार त्याग शरण जाता है तभी वह प्रेम और दया के धागों का बना रस्सा खिंचना आरम्भ हो जाता है और मुमुक्ष लुढ़कता पुढ़कता उस धारा को चीरता-चारता उस रस्से के सहारे खिंच जाता है। ऐसा करने पर थोड़ी ही देर में यह देखता है कि मैं जगत विधात्री दयाशीला अलौकिक शक्तिशालिनी 'माँ' की गोद में बैठा हुआ खेल रहा हूँ, अब न मुझे कोई दु:ख है, न बन्धन । यह सच्ची मुक्ति होती है कि जो समर्थ गुरु के सहारा लिये बिना नहीं मिलती और ऐसे मुक्तिदाता गुरु और भगवान में भेद नहीं होता है । जो यह है वही वह है और बस । अधिक कहना वृथा है । ✦ ✦

सम्पादकीय

(भण्डारा-एक आत्मिक यज्ञ)

रामाश्रम सत्संग के आयोजित भण्डारों का क्या महत्व है? इनमें भाग लेने से क्या लाभ मिलता है? रामाश्रम सत्संग का भण्डारा एक आत्मिक यज्ञ है। आपने सुना है महाभारत युद्ध में पाण्डवों को विजय मिली। हजारों लोग मारे गये। किसी के पिता, किसी के पुत्र तो किसी का भाई मारा गया। हजारों स्त्रियाँ विधवा हो गईं। एक भयंकर अशान्ति चारों तरफ छा गई। पाण्डव जब राज पथ से निकलते तो सभी उनको ताने देते थे। इन्होंने हमारे पिता को मार दिया, हमारे पुत्र को मार दिया, पाण्डव बहुत दु:खी थे। विजय तो प्राप्त हो गई, राजा तो हो गये पर सारा वातावरण क्लेश और दु:ख से भर गया। उन्होंने भगवान कृष्ण से पूछा कि क्या करें जिससे फैली हुई अशान्ति समाप्त हो? भगवान कृष्ण ने उनको आत्म यज्ञ करने की सलाह दी। साधारण यज्ञ में किसी विद्वान ब्राह्मण को बुलाया जाता है जिनकी अध्यक्षता में यज्ञ सम्पन्न होता है। लेकिन आत्मिक यज्ञ किसी संत की अध्यक्षता में होता है। साधारण यज्ञ में एक हवन कुण्ड में अग्नि जलायी जाती है और अधिष्ठाता के मंत्र बोलने पर यजमान उसमें हवन सामग्री की आहुति देता है। लेकिन इस आत्मिक यज्ञ का विधान अलग है। इसमें अधिष्ठाता संत न मंत्र बोलते हैं, न हवन सामग्री की आहुति देते हैं। इसमें संत कृपा करके आत्मा की अग्नि प्रज्वलित करते हैं। उस अग्नि में मन, बुद्धि और अहम् की आहुति दी जाती है। इससे जब मेरे मन की आहुति उस आत्म अग्नि में दी गई तो मेरे मन के सारे विकार-काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि उसमें दग्ध हो गये। मेरा मन कुन्दन हो गया। मन में कोई विकार न रहा। जब मेरी बुद्धि की आहुति दी गई तो जितना मैंने ज्ञान इकट्ठा कर रखा था उपनिषद्, वेद, पुराण, अन्य धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ कर, सुन कर सारा उस आत्म अग्नि में भस्म हो जाता है। मेरी बुद्धि निर्मल हो गई। ज्ञान पुस्तकों में नहीं है, वेद, पुराण, गीता में नहीं है। वास्तविक ज्ञान के परमाणु हमारे चारों तरफ फैले हुये हैं। आत्म अग्नि के जलने से मेरे आत्मा के परमाणु जाग्रत हो जाते हैं। तब मेरी बुद्धि के परमाणु जिनका काम ज्ञान लेना होता है चारों तरफ व्याप्त ज्ञान के परमाणुओं से सम्पर्क करते हैं और तब वास्तविक ज्ञान स्वत: ही मेरी बुद्धि में भरने लगता है। ज्ञान अर्जन के लिये कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, न पुस्तक पढ़ने पढ़ती। आप किसी सुन्दर बगीचे में घूमने जाते हैं। यदि आपको जुकाम नहीं हैं या नासिका बंद नहीं है तो वहाँ फैली हुई पुष्पों की सुगन्धि आपकी नासिका स्वत: ही महसूस करने लगती है। ऐसे ही जब मेरी बुद्धि निर्मल हो गई तो वह इस संसार में व्याप्त वास्तविक ज्ञान ग्रहण करने लगती है। मुझे बोध हो जाता है कि संसार है क्या? जब मेरे अहम् की आहुति दी गई तो जो 'मैं मेरा-तू तेरा' भरा था सब जल गया। मेरा मन, मेरी बुद्धि निर्मल हो गई। जहाँ मेरे मन, मेरी

बुद्धि, मेरे अहम् के विकार जल गए तो उनमें प्रकाश भर गया। आत्म ज्ञान बाहर से प्राप्त नहीं होता, ज्ञान आपके अन्दर है। जब आप के मन, बुद्धि, अहम् निर्मल हो जाते हैं तो आपमें विराजमान आत्म ज्ञान स्वतः प्रकाशित हो जाता है। उस प्रकाश में आप अपने को देखते हैं पहले आप अपने रूप को आइने में देखते थे पर अब आप अपने वास्तविक स्वरूप को देखते हैं अब तक तो मैं जीव था लेकिन अब मुझे बोध हो जाता है कि मैं भी वही परमात्मा हूँ, कोई फर्क नहीं। उस आत्मा के प्रकाश में संसार को भी देखता हूँ। सब में देखता हूँ कि यह एक ही तत्व सब में व्याप्त है। आत्म ज्ञान प्रकाश है। आपकी दृष्टि बदल गई। अब न काम रहा, न क्रोध रहा, न लोभ रहा, न 'मैं' रहा, न 'मेरा' रहा। निर्मलता भर गई। सब में अपनापन भर गया। बोध हो गया कि इस संसार में पराया कोई है ही नहीं। ईशावास्यमिदं.....। इस बोध से मेरा आचरण बदल गया, मेरी दृष्टि बदल गई। कल तक कुछ और देखता था अब कुछ और देखता हूँ। जैसे गीता में भगवान कहते हैं 'दिव्यं ददामि चक्षुः' अपने को देखने के लिये दिव्य दृष्टि आवश्यक है। दिव्य दृष्टि आप में ही है लेकिन मन के, बुद्धि के, अहम् के अन्धकार में छिपी हुई है। जब संत की कृपा से उनके विकार आत्म अग्नि कुण्ड में भस्म हो गए तो दृष्टि बदल गई और देखता हूँ सबमें वही परमात्मा है। यह आत्म यज्ञ है। हमारे गुरु महाराज ने इसी आत्म यज्ञ का नाम भण्डारा दिया। इसमें पात्र और अपात्र सभी बैठे हैं लेकिन गुरु कृपा का सागर है। भण्डारा वह है जहाँ गुरु अपनी आत्म शक्ति का भण्डार खोल देता है। आप पात्र हों या न हों, पापी हों, मैले हों अगर आप भण्डारे में आ गए तो गुरु का भण्डार खुला हुआ है आपके विकार दग्ध होते जायेंगे और आप में निर्मलता भरती चली जायेगी। आपके मन का, बुद्धि का, अहम् का हवन स्वतः ही होने लगेगा, आपको मालूम ही नहीं पड़ेगा। हमारे गुरु महाराज कहते थे। हम साधक की आँख में पट्टी बांध देते हैं, उसे नहीं मालूम पड़ता है कि उसकी अध्यात्म की कौन सी अवस्था है। जब मंजिल तक पहुँच जाता है तो पट्टी खुल जाती है तो देखता है यहाँ प्रकाश ही प्रकाश है, आत्म ज्ञान प्रकट हो जाता है। रामाश्रम सत्संग का भण्डारा 'जीभ' का भण्डारा नहीं है जहाँ हलवा पूड़ी मिलती है, क्षुधा मिटती है, जीभ स्वाद लेती है। यहाँ का भण्डारा 'जीव' के लिये है, आत्म शान्ति, आनन्द के लिये है। यहाँ मेरा जीवत्व अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। उस आनन्द की प्राप्ति के बाद उस जीभ का स्वाद पीछे रह जाता है। भण्डारे में आये जीव को आत्मिक सन्तुष्टि मिलती है। यहाँ गुरु दया करके अपना भण्डार सबके लिये खोल देता है। आपने सुना है कैसे-कैसे पापी संतों के पास आये। अंगुलीमाल जिसका काम केवल लोगों को मारना, काटना था लेकिन भगवान बुद्ध की एक नजर ने उसके सारे पापों को दग्ध कर दिया। 'कोटिन पाप कटैं एक पल में जो गुरु कृपा करें। एक विचित्र बात और है रामाश्रम सत्संग के भण्डारों में। यहाँ आत्मयज्ञ प्रारम्भ करने वाले भी बैठे हुये हैं और पुराने विद्यार्थी भी बैठे हुये हैं लेकिन ऐसा क्लास है जहाँ सबको अपने स्तर से ज्ञान प्राप्त होता है। प्राईमरी वालों को प्राईमरी क्लास का ज्ञान प्राप्त हो रहा है, ऊँचे क्लास वालों को उनके स्तर का और जो पूर्णता को अग्रसर हैं उनको पूर्णता का बोध कराया जाता है, सबकी सन्तुष्टि हो रही है। गुरु महाराज ने आनन्द, ज्ञान, प्रेम सन्तुष्टि का भण्डार खोल दिया, कोई कमी नहीं

है। देखा गया कि भण्डारे में भाग लेने वाले सभी एक अजीब आनन्द में डोल रहे हैं, क्या खा रहे, कहाँ सो रहे हैं, कौन सा दिन है, कौन सी तारीख है कुछ भी ज्ञान नहीं। हमारे गुरु महाराज ने इन भण्डारों की पांच मीटिंग की व्यवस्था की। उन्होंने कहा हम जीव पर पाँच आवरण आ जाते हैं जिन्हें पांच कोश कहते हैं- आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोश। इन पांच कोशों ने हमारी आत्मा को ढक लिया है। इसलिये आत्मा का प्रकाश या आत्म ज्ञान बाहर नहीं आता है। प्रकृति का ज्ञान लेकर बैठा हूँ। हमारा निर्माण दो तत्वों से हुआ है- प्रकृति और आत्मा। प्रकृति से आच्छादित होने के कारण मेरी बुद्धि प्रकृति का ही ज्ञान लेती है। **देखिअ सुनिय गुनुअ मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं।** यहाँ संसार में जो भी सोच रहे, बात कर रहे हैं सब प्रकृति है परमार्थ नहीं है। आत्मा की जुबान नहीं है उसमें आनन्द है। उस आनन्द और प्रकाश में कौन बात करेगा? गुरु महाराज ने कहा है कि भण्डारों की पांच मीटिंग करने से धीरे-धीरे हमारे पांच आवरण या कोश उतर जाते हैं। आत्म ज्ञान प्राप्त करना वर्षों का काम नहीं एक पल का है। आपने सुना होगा जब ऋषि अष्टावक्र ने राजा जनक से राज्य के प्रति लिप्सा, अहम् और राजा होने का ज्ञान को दान द्वारा छीन लिया तो एक पल में ही राजा को आत्म ज्ञान प्राप्त हो गया। हम लोग जो भण्डारे में जाते हैं, वहाँ साधना करते हैं वह पूर्ण त्याग की अवस्था में जाने की तैयारी है। भण्डारे में भाग लेना आत्म ज्ञान प्राप्ति के लिये तैयारी है। वह आत्म ज्ञान कब आयेगा कोई निश्चित नहीं है। जब तैयारी पूरी हो जायेगी, गुरु कृपा से सब विकार दग्ध हो जायेंगे। मैं आत्मा में स्थित हो जाऊँगा, एक पल में ही आत्म ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। वह पल कब आयेगा यह निर्भर करता है हमारे ऊपर। गुरु तैयार है लेकिन हम लोग तैयार नहीं हैं। गुरु कहता है अपने मन, बुद्धि, अहम् को आत्म अग्नि में डाल दो पर हम पीछे हट जाते हैं इस मन में मेरी कितनी प्रिय चीजें भरी हुई हैं कैसे आहुति दूँ। इस बुद्धि में बहुत ज्ञान है कैसे भस्म करूँ? यह मैं मेरा अगर जल गया तो मेरा अस्तित्व ही नहीं रहेगा तो मेरे जीने से फायदा क्या रहेगा? आत्म ज्ञान प्राप्ति में विलम्ब हमारी ओर से है। हमें हमारे विकार मीठे लगते हैं हम उन्हें आभूषण समझ कर अपने से लिपटाये रखते हैं। लेकिन हमारे गुरु कहते हैं कि मैं जानता हूँ तुम अपने मन, बुद्धि, अहम् को बहुत प्रेम करते हो उनकी आहुति नहीं दे पाओगे। लेकिन जब तुम मेरी शरण में आए हो तो मैं आहुति करा लूँगा और तुमको मालूम भी नहीं पड़ेगा कि कब सब विकार भस्म हो गये। उन्होंने बहुत कृपा कर के महान पर सरल साधना दी जिसके द्वारा हम प्रकाश के माध्यम से गुरु की शक्ति को अपने अन्तर में भरते हैं। जैसे-जैसे गुरु शक्ति मेरे अन्दर भरती जायेगी मेरे विकार दग्ध होते जायेंगे और एक दिन आयेगा जब मेरा मन, बुद्धि, अहम् पूर्ण निर्मल हो जायेगा। हमें बोध हो जाता है कि गुरु महाराज ही हमारे परमात्मा हैं, वही हमारे सब कुछ हैं। तब मैं अपने को सौंप देता हूँ। उस पल गुरु मुझे आत्म ज्ञान प्रदान कर देते हैं। निर्मलीकरण में ही देर थी। जब पूर्ण निर्मल हो गया तो एक पल में ही आत्म ज्ञान हो गया। एक पूर्णता आपमें आ गई। सबके लिये प्रेम हो गया कोई पराया नहीं रहा। जीवन कृतार्थ हो जाता है।

◆◆

प्रवचन पराग :-

उदारता और जीवन

— परम भागवत परम संत पं. मिहीलाल जी

उदारता जीवन का एक महान सुन्दर गुण है । यह प्रभु की महान देन है । जिसके ह्रदय में उदारता होती है, समझो इन पर प्रभु की विशेष ही दया है । उदारता यही नहीं है कि हम दूसरों को धन की कुछ सहायता दे दें । ऐसी उदारता तो बस धनी ही कर सकता है, लेकिन धन का दान कर देने से भी आगे और भी बढ़िया उदारता है जिनको हर व्यक्ति कर सकता है । उदार और धनी में भेद है । उदार मनुष्य वही है जिनका ह्रदय दूसरों के लिए खुला भण्डार है। क्योंकि मनुष्य के लिए केवल धन ही तो नहीं चाहिये, उसे और भी वस्तुओं की आवश्यकता होती है । एक बार एक भाई ने अपनी एक बात सुनाई । वह लिखते हैं कि मुझे एक गाँव में जाना था, लेकिन मार्ग पैदल का था । मार्ग में देर हो गई । मेरे पास वस्त्र नहीं थे । जाड़े के दिन थे । सूरज छुप गया, सर्दी भी पड़ने लगी । अभी वह गाँव जहाँ पहुँचना था, लगभग चार मील दूर था । सोचा वहाँ अब पहुँच नहीं पाऊँगा । अब इसी गाँव में ठहर जाऊँ। गाँव छोटा सा ही था, उसमें कुछ गरीब कृषक लोग ही रहते थे । गाँव के किनारे खेत में छोटी-सी झोपड़ी थी उसमें एक आदमी अग्नि जला कर ताप रहा था । मैंने कहा-क्या आपकी झोपड़ी में आज की रात मैं भी काट सकता हूँ ? वह बोले- ''हाँ, हाँ, अवश्य ठहर जाइये । हम दो हो जायेंगे और आनन्द रहेगा ।''

मैंने अपना झोला भीतर रख दिया और नीचे बैठने लगा तो वह बोले, आप इस चारपाई पर बैठ जाइये और इसी पर रात्रि को आराम कीजिये । यह कहकर वह एक पाँच ही मिनट को बाहर गये, लौटकर आये तो साथ ही एक लड़की आई और उनसे कहने लगी-दादा ! आपके यहाँ जो अतिथि ठहरे हैं, उनके लिए मैं भोजन लाई हूँ । उन्होंने उससे भोजन ले लिया और मेरे सामने रख दिया कि भोजन कीजिए । मैंने कहा आप भी खाइये, कहने लगे- मैं अभी घर खाना खाके ही आया हूँ। मैंने बैठ कर भोजन किया। भोजन तो बहुत सादा ही था, परन्तु न मालूम क्या बात थी, मुझे भोजन करने में जो आनंद उस दिन आया, आज तक नहीं मिल पाया । जब खाना खा लिया तो वह बोले आप अब आराम कीजिये। मैं जरा खेत पर घूम आऊँ । यह कहकर बाहर चले गये, और मुझे भी नींद आ गई और गहरी निद्रा में सो गया । प्रातः काल जब मैं बाहर निकला तो देखा, वह आग जला कर ताप रहे थे । मुझे पीछे यह भी पता लगा कि रात्रि को जो भोजन लाया गया था उन्हीं के लिए था और जो कपड़े मैंने रात्रि में ओढ़े, उन्हीं के थे और रात्रि उन्होंने ताप-ताप कर ही

व्यतीत की थी । उनके व्यवहार से मैं आवाक् रह गया । मेरा हृदय आज भी कहता है कि वह कैसे महात्मा थे कि मेरे लिए सारी रात भूखे और जाड़े में व्यतीत कर दी ।

उदारता और सत्संग

मेरे मन में आया कि कुछ देर पास और बैठूँ और कुछ बातें करूँ। मैंने बैठकर उनसे कहा कि आप का स्वभाव तो बहुत ही उदार है । मेरे लिए आपने रात को बड़ा कष्ट उठाया । वह बड़े गम्भीर से हो गये और भरी हुई आँखों से बोले-क्या कहूँ आपसे मेरे अन्तर में उदारता नाम को भी नहीं थी । मेरे अन्दर तो सभी तरह के अवगुण थे, मैं कैसा था, आपसे बता नहीं सकूँगा । जो नीच कर्म और अनाचार मैंने किये हैं, याद करता हूँ तो हृदय बैठने लगता है । परन्तु आज जो आप मुझसे कह रहे हैं एक महात्मा की कृपा है, उन्हीं की देन है । उन्होंने मेरे अन्तर की कालिमा निकाल कर प्रकाश भर दिया है, मैं अनेक जन्मों तक उनका ऋणी ही रहूँगा । जब प्रथम बार उनके निकट गया था तो उन्होंने सिर्फ इतना ही कह दिया था, कि भाई तुमको मनुष्य का जन्म मिला है, इस नाते प्रात: सायं थोड़ी देर बैठकर उस प्रभु का ध्यान कर लिया करो और ध्यान में बैठने की विधि भी बतला दी । मैं बैठने लगा, और नित्य के ध्यान करने से ऐसा लगा कि मेरे मलिन विचार साफ हो रहे हैं और उनके स्थान पर अच्छे विचार भरने लगे हैं। मेरी संगति भी बदलने लगी और चित्त अच्छे मनुष्यों के पास बैठने को करने लगा । कुछ दिन तो मैं नित्य ही उनके पास जाता रहा, फिर न भी जा सकूँ तो उनकी याद हर समय मुझे आने लगी । इस क्रिया से मेरे विचार और भी स्वच्छ हुए और मैं मध्यम (विक्षेप) विचारों से भी आगे यह सोचने लगा, कि क्या कभी मैं इस संसार के द्वन्द से भी पार हो सकूँगा । मैं फिर उनके निकट गया तो कहने लगे, देखो इस संसार से पार होना कुछ कठिन बात नहीं है, यदि भगवान की दया रहे, तो बस ऐसा ही हो जायेगा, जैसे कोई आदमी स्वप्न से जाग जाय ।

मैं फिर भी उनके पास जाता रहा और ध्यान की क्रिया भी बराबर चलती रही । अब मेरे अन्तर में केवल प्रभु मिलन की एक तीव्र इच्छा जाग्रत हो गई, और मैंने उनके चरणों में बैठकर एक दिन निवेदन किया । प्रभु अब मैं संसार के सारे काम भी करता हूँ, पर हर क्षण मेरे अन्तर में प्रभु मिलन की एक गहरी धारणा और इच्छा बढ़ती जा रही है । क्या मुझ जैसे पापी आदमी पर आपकी ऐसी कृपा भी हो सकती है । वह थोड़े मुस्कराये और बोले-वत्स ! अब तुम बहुत ही निकट भविष्य में उस महान का दर्शन करोगे और कृतार्थ हो जाओगे । तुम्हारे ऊपर प्रकृति के तीन पर्दे (मल, विक्षेप आवरण) थे समाप्त हो गये हैं, केवल एक आवरण मात्र रह गया है, जल्दी वह भी पार कर जाओगे ।

यह आवरण बहुत हल्का एक पर्दा है, उनकी दया से वह भी हट जायेगा और तुम तीनों गुणों से पार हो जाओगे । यह आवरण और कुछ नहीं है, वह है गुरु को एक साधारण मनुष्य जानना, मनुष्यों को अपने से हेच समझना, फिर इस सृष्टि के

जीव जन्तुओं को अपना भोजन और सुख की सामग्री जानना, उनके साथ निर्दयता और कठोरता का व्यवहार करना आदि। जिसका यह आवरण हट जाता है, वह बस सबके अन्तर में अपने प्रभु को देखता है, भव सागर से पार हो जाता है । उनकी ऐसी सब बातें सुनकर मेरी इच्छा हुई कि कुछ देर और बैठूँ और जो बातें मैं बराबर अपने लिए सोचा करता था, सम्भव है इनके द्वारा कुछ और भी स्पष्ट हो जायँ । क्योंकि जिनको कभी प्रभु दर्शन का सौभाग्य मिला है, ऐसे ही सुराग से (मार्ग दर्शन का लाभ) मिला है । मुझे पता लग रहा है कि मेरे ही कल्याण के लिए, यह संयोग कृपा करके प्रभु ने दिया और होता भी यही है कि जब एक ही पथ के दो पथिक इकठ्ठे हो जाते हैं, आनंद दोनों ही को आने लगता है, सोचते हैं कि कुछ हरि चर्चा होती रहे, प्रभु के कुछ गुणानुवाद सुनने को मिलते ही रहें । कहा भी है ''राम चरित जे सुनत अघाहीं । रस विसेष जाना तिन नाहीं।।'' जो भगवान के चरित सुनते-सुनते तृप्त हो जायें, वास्तव में अभी वह प्रभु नाम के आनंद को जान ही नहीं सके ।

एक भक्त ने तो ऐसा लिखा है कि जैसे समुद्र के अन्दर सहस्त्रों नदियाँ आकर मिलती हैं परन्तु समुद्र कभी भरता नहीं, कभी तृप्त नहीं होता, ऐसे ही भक्त वही है जो हर क्षण प्रभु के गुण तथा उनकी कथा सुनने को अपने कान लगाये ही रहे। फिर भक्त वही है जो अपने नेत्र प्रभु-दर्शन के लिए सदा खोले ही रहे । और भक्त वही है जिसकी अन्तर जिह्वा संसार के सारे काम करते हुए भी प्रति क्षण प्रभु का नाम लेती रहे । फिर आगे भक्त वह भी है जो चलते-फिरते सदैव ही प्रभु के सुन्दर स्वरूप की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करते रहें और हाथ भी संसार के सारे काम करते हुए प्रभु के चरण-स्पर्श का आनंद लेते रहें ।

सम्प्रदाय और सत्संग

निश्चय समझो कि जब तक मनुष्य अपने किसी सम्प्रदाय की ही सेवा करता रहे, उसी को बड़ा मानता हुआ, उन्हीं लोगों के लिए लाभ पहुँचाता रहे, वह चाहे कितना ही त्यागी और महात्मा बन जाय, भगवान के यहाँ उसकी इतनी ही मान्यता है, जैसे कोई अपने परिवार के लिए ही सारे काम कर रहा हो, उससे आगे नहीं । फिर कोई यदि किसी सम्प्रदाय की नींव डालकर प्रभु के किसी नाम की ही कहे, कि भगवान का यही नाम सत्य है, और कोई नहीं, समझो कि अभी इसने प्रभु नाम को जाना ही नहीं, क्योंकि यहाँ पर प्रत्येक नाम ईश्वर का है । जिनका हृदय उदार होता है, वह प्रभु के प्रत्येक नाम के लिए अन्तर से प्रणाम करते हैं । जिनके अन्तर में भगवान के एक नाम से प्रेम और दूसरे नाम से प्रेम नहीं वह उन नादान बच्चों के समान है जो अपने पिता से यदि दादा जी कहता है तो दूसरे सभी लोगों से कहता है, तुम सब लोग इनसे दादा जी ही कहो, मामा, भाई आदि न कहो । वह क्या जानता है कि एक ही मनुष्य से अनेक लोगों के अलग-अलग कितने सम्बन्ध होते हैं ।

उदार पुरुष वही है जिनका हृदय सभी के लिए खुला है । जिसका हृदय जितनों के लिए

खुला है वह उतना ही महान है, परन्तु जिनका हृदय सबके लिए खुला, वह ईश्वर के समान है । वही सबसे महान भी है । संत ऐसे ही उदार हृदय वाले होते हैं ।

यहाँ जो कुछ है परमेश्वर का है इसीलिए जीवन में उदारता लाओ । उनकी वस्तु उनके बच्चों को देने में कृपणता मत करो । धन दो, वस्त्र दो, यश दो, ज्ञान दो, वह घटेगा नहीं, उतना ही बढ़ता जावेगा जैसे कुयें का जल निकालने से घटता नहीं । यह आध्यात्मिक ज्ञान और भी श्रेष्ठ है । तुम्हें गुरु ने यदि दिया है तो इसको गरीबों में बाँटो, धनिकों को बाँटो, दु:खियों को बाँटो, सुखियों को बाँटो क्योंकि इसकी आवश्यकता हर एक को है । धनी इसको पाकर सन्तुष्ट होंगे, निर्धन इसको पाकर धन की इच्छा ही नहीं करेंगे, दु:खी इसको पाकर दु:खों से छूट जायेंगे, सुखी इसको पाकर सेवा में लग जायेंगे ।

उदार महापुरुषों में भी एक उदार होते हैं दूसरे परम उदार । उदार वह हैं जो अपने भोजन में से कुछ दूसरों को भी दे देते हैं, अपने रुपयों में से कुछ रुपया दान कर देते हैं, वस्त्र अधिक हैं तो कुछ दे देते हैं । परम उदार वह है जो दूसरों के भले के लिए अपने भले की भी परवाह नहीं करते, दूसरे को भूखा देख अपने भूख की भी परवाह नहीं करते जैसे राजा रंति देव आदि की कथाओं में सुनते हो । जिनका हृदय दूसरों के दु:ख को देखकर ही पिघल जाता है और उनका दु:ख दूर करने में स्वयं कष्ट सहने को तैयार हो जाते हैं । वही परम उदार पुरुष हैं, संत हैं ।

✦✦

पथ-प्रकाशक

प्रिय.........

रामाश्रम-एटा

16-03-44

प्रेम । अपना साधन करते जाना चाहिए । जो श्रद्धा पूर्वक भगवान की ओर बढ़ता है उसे वह स्वयं ही हाथ पकड़ के बुला लेते हैं । इसलिए आशा और विश्वास को नहीं खोना चाहिए उनकी दया अवश्य होगी।

चिन्तन जितना भी अधिक रहे उतना ही मनुष्य उसके समीप होता जाता है क्योंकि वृत्ति का झुकाव उधर को उस समय हो जाता है । इसलिये जितना हो सके याद रखने की कोशिश करते रहना चाहिये, इसी को भृंगी साधना कहते हैं । शेष कुशल है ।

हस्ताक्षर परम पूज्य श्री गुरुदेव

सुधा-सार :-

सच्चिदानन्द स्वरूप की प्राप्ति हेतु

— प्रेममूर्ति परम संत श्री डा. नरेन्द्र कुमार जी

यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह सुख और शान्ति चाहता है कारण कि मनुष्य स्वरूपत: सच्चिदानन्द स्वरूप है अर्थात् आनन्दस्वरूप। इसलिए कि उसे आनन्द या सुख और शान्ति की याद बनी हुई है। अत: वह अपने जीवन में सारे कर्म उसी को प्राप्त करने के लिए करता है, परन्तु कर्म कैसे करना चाहिए यह वह नहीं जानता।

भगवान ने मनुष्य को एक इन्द्रिय दी है जिसका नाम 'मन' है। कोई भी कर्म हो, चाहे सांसारिक या पारमार्थिक, जब तक मन उसमें साथ नहीं देगा तब तक कर्म सफल नहीं होगा। इसलिए अगर सुख और शान्ति चाहते हैं तो पहिले मन की प्रकृति को समझने का प्रयास करें।

पहली बात जो मन के बारे में समझने की है वह यह है कि मन कभी विचारों से खाली नहीं रहता। वह या तो भविष्य के सपने बनाता रहता है या भूत काल में जो कुछ हुआ उसके बारे में सोचता रहता है। ऐसा समय बहुत कम होता है जब वह वर्तमान में रहता है। अगर मन किसी कार्य को करते समय वर्तमान में नहीं रहेगा तो वह अपने कार्य में सफल नहीं हो सकेगा।

इसलिए अगर हम जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें मन में ऐसी आदत डालनी चाहिए कि वह कार्य करते समय केवल वर्तमान में रहे। अगर वह भूत या भविष्य में चला जायगा तो हम अपनी पूरी क्षमता से वह कार्य नहीं कर सकेंगे और तब उसमें सफलता प्राप्त करने में सन्देह रहेगा और यदि सफल नहीं हुए तो फिर सुख-शान्ति कैसे मिलेगी?

दूसरी बात जो मन के बारे में समझने की है वह यह है कि सुख और शान्ति तो तब प्राप्त होती है जब मन अपने विचार छोड़ देता है। जैसे लड़की की शादी नहीं हो रही तो माँ बाप इस विचार के कारण दु:खी रहते हैं। किन्तु जिस दिन शादी हो जाती है तब वह विचार छूट जाता है और उन्हें सुख शान्ति प्राप्त होती है।

अत: पहला कार्य जो मन को सिखाना है वह है विचार छोड़ने की कला। जब एक विचार छोड़ने से मन सुखी होता है तो सभी विचारों को छोड़ देने से मन कई गुना सुखी होगा। वास्तव में जो सुख और शान्ति एक विचार के छोड़ने से अनुभव होती है वह बहुत थोड़ी देर ही हमारे पास रह पाती है। परन्तु अगर हम मन को ऐसी कला सिखा दें जिससे कि वह बहुत समय तक विचार रहित रह सके तो हमें असली सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है और हम परमात्मा की तरफ अग्रसर हो सकते हैं। इसी बात को महर्षि पतञ्जलि जी ने "योगश्चित्त वृत्ति निरोध:" के रूप में प्रदर्शित किया है। अत: मन या चित्त में किसी तरह के विचार को न रहने देना ही वास्तविक सुख और शान्ति प्राप्त करने का असली रास्ता है। यही परमात्मा की प्राप्ति का भी रास्ता है।

सुख और शान्ति प्राप्त करने के लिए तो हमें परमात्मा या गुरु के चैतन्य स्वरूप पर ही अपना मन केन्द्रित करना पड़ेगा। हमारे यहाँ की साधना की क्रिया से हम अपने मन को एक विचार पर केन्द्रित करते हैं तो एक समय आता है जब हम अपने इस विचार को भी भूल जाते हैं और हम उस समय अपने स्वरूपत: सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित हो जाते हैं।

✦✦

मामूली पर महत्वपूर्ण बातें

— संत श्री ओमप्रकाश 'विरल' जी

हम लोग चाहे साप्ताहिक सत्संग में बैठें अथवा भण्डारों में जाकर परमात्मा का ध्यान करने बैठे हों, दो-चार बातें यद्यपि मामूली सी हैं पर महत्वपूर्ण बहुत हैं । अतः उनको जान लेना और तदनुसार व्यवहार में लाना साधकों के कल्याण के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं ।

पहली बात तो यह है कि जब हम ऐसे सत्संग स्थल पर जाएँ तो यह समझकर जाएँ कि हम किसी के घर अथवा स्थान पर नहीं वरन् एक समर्थ गुरु के दरबार में बैठने जा रहे हैं जो हमारे कल्याण के लिए वहाँ बैठा हमारी बाट जोह रहा है । जैसे गाय के पास बछड़ा दौड़ता हुआ, उसी के स्वरूप पर केन्द्रित होता हुआ एक ही लक्ष्य को धारण किये दौड़ता है, ऐसे ही हम भी थोड़े ही समय के लिए ही सही यह समझकर जायें कि वहाँ हमारी जगत जननी हमारे लिए कृपा करने को आकुल-व्याकुल बैठी है ।

यह बात केवल साधकों के लिए ही नहीं वरन् उपदेशकों के लिए भी अत्यन्त महत्व की है, क्योंकि जिस मंच पर कभी गुरु महाराज बैठते थे उस मंच पर हमें थोड़ी देर के लिए बैठने के लिए कहा गया है। यह मंच न मेरा है, न तेरा है, न इसका है, न उसका है, वह केवल गुरु महाराज का है । अतः बड़े अदब एवं निरभिमानिता से भय खाते हुए, अन्तर ही अन्तर में दया की प्रार्थना करते हुए बैठना चाहिये, क्योंकि वह मंच केवल गुरु महाराज का ही है । अनेक भक्त जो उस मयखाने में सराबोर होने के लिए आए हैं उनका साकी उनका दाता केवल गुरु ही है । इस वास्ते अपनी सूरत उन्हीं में मिलाते हुए वहाँ बैठना चाहिये तभी वहाँ से अमृत की वर्षा होगी जिसे सूफियों की भाषा में 'फैज़' कहते हैं और जिसके लिए हर आदमी दूर-दूर से कष्ट उठाके, पैसा खर्च करके वहाँ पहुँचता है ।

तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि जब हम ध्यान से पूर्व सत्संग की प्रार्थना कहें तो यह समझ कर कहें कि हम गुरु अथवा ईश्वर को सुनाकर कह रहे हैं और वह हमारी बात, हमारी यह विनय ऐसे ही सुन रहे हैं जैसे सूरदास के गीतों को सुनने के लिए श्याम सुन्दर बैठे रहते थे । जो जिसे अपना दर्द सुनाता है वह चाहे देवता हो अथवा गुरु अथवा ईश्वर सुनने के लिए आता अवश्य है और जितने अधिक भाव और तन्मयता से हम अपनी बात कहते हैं उतनी ही अधिक उनके पास पहुँचकर हमको कृतार्थ करती है।

जब हमें ध्यान करने का आदेश हो तो हम

स्वतः कुछ न करें । प्रारम्भ से ही यह देखें कि परमात्मा अथवा गुरु हमारे लिए एक चीज भेज रहे हैं । उस समय मन की गति की ओर ध्यान न देकर केवल उधर से आने वाली प्रकाश की धार को-अमृत वर्षा को ही देखना चाहिए । कवियों की भाषा में जब साकी शराब पिला रहा हो तो हमें भी एक घूँट ही सही अपने अन्दर ले लेनी चाहिये क्योंकि उसी के लिए हम वहाँ जाते हैं ।

जब ध्यान समाप्त हो और प्रार्थना भी समाप्त हो जाय तो भी कुछ समय हमें शान्त ही बैठे रहना चाहिये । जैसे निद्रा से जागने के पश्चात् खुमारी बनी रहती है वैसी ही हमारी दशा होनी चाहिये और अपने ख्याल को एक साथ न हटाकर धीरे-धीरे विचारों में आना चाहिये क्योंकि विचारों से ऊपर जाने के लिए ही हम इस दरबार में आते हैं । जो लोग तत्काल ही बात करने लगते हैं अथवा गम्भीरता छोड़ बैठते हैं उनसे चीज जल्दी हट जाती है और उसका पूरा लाभ उनको नहीं मिल पाता । जैसे बर्षा के बाद हलकी फुहार रह जाती है और घटायें बनी रहती हैं वैसे ही हमारे मानस पटल से ये घटायें भी तत्काल लुप्त नहीं होनी चाहिए । यद्यपि ये घटायें वहाँ छायी रहती हैं पर हमारे शीघ्र विचारों में चले जाने से उनका अनुभव नहीं हो पाता । अतः इस थोड़े से समय में साधक के लिए सावधानी बरतना उपयोगी रहता है ।

एक बात समझ लेने की है कि मैली चादर एक साथ ही साफ नहीं हो जाती । उसे बार-बार धोना पड़ता है । ऐसे ही जीवन की यह चादर जो अनेक दाग धब्बों से मैली हो चुकी है; जिसमें मलिन विचारों के साथ अधकचरा ज्ञान भी है, स्वच्छ करने के लिए सतत समझदारी की आवश्यकता भी रहेगी ही। सन्तों के मुख से सुना है कि आदमी चाहे जितना ऊँचा उठ जाय आखिरी वक्त तक खतरा रहता है । पता नहीं कब, कहाँ से पतन हो जाय । अतः नरहरि की ओर सदैव ही अपना विचार लगाये रहना चाहिये।

एक बात और है गुरु सदैव शरीर से नहीं रहते पर गुरु-तत्व सदैव रहता है । उनकी वाणी उन्हीं का स्वरूप होती है । समझें तो वह उनका साकार स्वरूप भी है । अतः उसका पठन-पाठन और अनुशीलन भी साधक को वैसे ही लाभ पहुँचाता रहता है जैसे कभी उनका शब्द सामने बैठकर सुनने से लाभ होता था ।

हैं तो ये मामूली सी बातें पर हम सबके लिए महत्वपूर्ण बहुत हैं क्योंकि सत्संग का पूरा लाभ इनकी उपेक्षा करने से मिल नहीं सकता । ✦✦

सन्त वचन

प्रवचन सदा ही दूसरे के वचन हैं। एकत्र की हुई जानकारियाँ सूचनामात्र होती हैं, ज्ञान नहीं। अनुभव से निकला हुआ ज्ञान स्वयं को प्रकाशित करता है और जगत को आलोकित। तुम पहले स्वयं को प्रकाश पहुँचाओ, फिर ज्ञान स्वयं ही तुम्हारे माध्यम से प्रवाहित होने लगेगा।

ग़ज़ल

– श्री गोपाल कृष्ण रंजन

अभी अभी तो मिले थे, और मुलाक़ात गुज़र गई
प्यास की ताब यूँ ही रही और बरसात गुज़र गई
तेरे फिराक़ में कट ही जाएँगे ये शबो-रोज़ो-माहो-साल
तक़दीर ने तेरा दर न दिखाया, उम्र यूँ ही गुज़र गई
अक़्ल से पिन्हा पर इश्क़ से नुमाया, बहुत प्यारा है वह
खुश्बू-ए-एहसास है उसका वुजूद, आई और छूकर गई
है बयान मुश्किल उसके लुत्फ़े-निगाह का असर
क़ायनात की हदें मिटीं, क़तरे में ज्यूँ समा समंदर गई
उसका ही जहूर हर ज़र्रे में है, वो ही हर रूह में झाँकता है
गैरियत से ग़ाफिल, सब मेरे मैं सबका एहसास घर कर गई
दिल का आईना साफ रखूँ, जाने कब उसका अक़्स उतर आए
यूँ न हो कहीं वो तो आएँ और मुझपे ही नावाक़फियत गुज़र गई
कभी होगी तुम्हें भी ख़बर हालत की मेरी, इस एहसास ने
दिल को बहला रखा है, बेयक़ीनी नफ़्स से बारहा गुज़र गई

(1) ताब-तीव्रता (2) फिराक़-जुदाई (3) शबो-रोजो-माहो-साल-रात-दिन-महीने साल (4) पिन्हा-छुपा हुआ (5) नुमाया-प्रकट (6) क़ायनात-ब्रह्माण्ड (7) जहूर-उपस्थिति (7) ग़ैरियत-परायापन (9) अक़्स-प्रतिबिम्ब (10) नावाक़फियत-पता न चलना (11) नफ़्स-मन (12) बेयक़ीनी-अविश्वास ।

प्रेरक-प्रसंग

प्रेम-सरोवर

– संत श्री ललित प्रभ सागर जी

मैंने एक राजस्थानी कहावत पढ़ी है-'कुत्ता लड़ै दातां सूं. मूरख लड़ै लातां सूं. और संत लड़े बातां सूं.। सभी लड़ने में मशगूल हैं । धोबी-धोबी से मिलता है तो राम-राम करता है, नाई -नाई से मिलता है तो राम-राम करता है, जो भी एक दूसरे से मिलते हैं तो नमस्कार प्रणाम करते हैं, मगर दुर्भाग्य यह है कि अगर संत, संत से मिलता है तो वह हाथ भी जोड़ने को तैयार नहीं होता । सोचें, वस्त्र बदलकर साधु तो हो गए हैं पर क्या मन से भी साधु हो पाए हैं ?

जिसके मन में कठोरता, कटुता, कलह और संघर्ष की भावना रहती है उसके चित्त में कभी किसी के प्रति प्रेम नहीं होता । उसके प्रेम के सरोवर का पानी सूख जाता है और उसमें दरारें पड़ जाती हैं । स्नेह की कमी से मेलजोल में कटौती होती है । वह स्वयं तो दु:खी रहता ही है किंतु अपनी उपस्थिति से आसपास के लोगों को भी दु:खी करता है । अपने क्रोध और अंहकार से स्वयं को तो दंडित करता ही है, दूसरों को भी दंडित करने की सोचता रहता है । इतिहास में खून की जो नदियाँ बहती रही हैं, उनका एकमात्र कारण प्रतिशोध और बदले की भावना रही है । चिरकाल तक मनुष्य के मन में प्रतिशोध की भावना लहराती है । आइये, हम जीवन का बोध जगाएँ, प्रतिशोध को हटाएँ और प्रेम की गंगा-यमुना को अपने हृदय में बहाएँ ।

ये चार दिन

एक बार हम अपने मन को टटोलें, किसी धार्मिक ग्रन्थ की तरह ईमानदारी से अपने मन को पढ़ें, अपनी विचार स्थिति को पढें कि कहीं उसके भीतर कोई वैर तो नहीं है । चार दिन की छोटी-सी जिंदगी में दो दिन तो बीत गए और शेष दो दिन भी बीत जाएँगे-फिर किस बात का वैर-विरोध ।

चार दिन की जिंदगी में, इतना न मचल के चल ।
दुनिया है चल-चलाव का रास्ता, जरा सँभल के चल ।।

छोटी-सी जिंदगी में कैसा वैर-विरोध! मेरे प्रभु, छोटी-छोटी बातों की गांठें न बाँधें । जैसे गन्ने की गांठ में एक बूंद भी रस नहीं होता वैसे ही जिस आदमी के मन में गांठें बन जाती हैं, उसका जीवन भी नीरस हो जाता है ।

इतिहास की एक घटना है-काशी में ब्रह्मदत्त नाम के एक नरेश हुए । उनके पड़ोसी राज्य 'कौशल' के राजा थे दीर्घेती । एक दफा कौशलनरेश और काशीनरेश के मध्य युद्ध हुआ। कौशलनरेश अपनी रानी को लेकर पलायन कर गए, क्योंकि उन्हें पता लग चुका था कि उनकी पराजय तय है । जंगल में वे दोनों कुटिया बनाकर रहने लगे । उस समय रानी गर्भवती थी । कुटिया में ही उसने एक बच्चे को जन्म दिया । दीर्घेती ने

उस बच्चे का नाम दीर्घायु रखा । दीर्घेती के मन में संशय था कि ब्रह्मदत्त, कभी भी यहाँ पर हमला कर सकता है । यह सोचकर उसने दीर्घायु को विद्याध्ययन के लिये दूर भेज दिया । उधर ब्रह्मदत्त के सैनिकों ने दीर्घेती और उसकी पत्नी की हत्या कर दी । दीर्घायु ने जब यह समाचार सुना तो उसने संकल्प किया कि वह अपने माता-पिता की हत्या का बदला जरूर लेगा। प्रतिशोध की आग से भरे हुए दीर्घायु ने काशीनरेश के यहाँ घुड़साल में नौकरी पा ली । वहाँ नौकरी करते हुए वह अपनी निपुणता से राजा का चहेता बन गया। राजा ने उसे घुड़साल की नौकरी से हटाकर अपने निजी सहायक के रूप में नियुक्त कर लिया । मन में प्रतिशोध की भावना होने के बावजूद वह उसी के यहाँ काम कर रहा था । दिन, महीने साल बीत गए । एक दिन राजा ब्रह्मदत्त दीर्घायु को साथ लेकर शिकार खेलने गया वह नहीं ज़ानता था कि वह शत्रु का पुत्र है लेकिन दीर्घायु तो अपने पिता के हत्यारे को जानता था । दोनों घनघोर जंगल में पहुँच गये । राजा थक चुका था, अत: एक पेड़ की छाँव में दीर्घायु की गोद में सिर रखकर विश्राम करने लगा । थोड़ी देर में उसे नींद आ गई ।

बदले से बढ़कर क्षमा

दीर्घायु बार-बार राजा के चेहरे को देखता और सोचता-'आज मौका है । यही वह व्यक्ति है जिसने मेरे पिता से युद्ध करके उन्हें पराजित किया था । यही है वह जिसने मेरे माता-पिता की हत्या करवाई । आज मुझे मौका मिला है, मैं अपने माता-पिता की हत्या का बदला लूँगा- ऐसा सोचते हुए उसने अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाली । वह ब्रह्मदत्त पर वार करने ही वाला था कि उसे पिता के वचन याद आए-'बेटा, प्रतिशोध की भावना से भी महान क्षमा होती है । महान वे नहीं हैं जो प्रतिशोध की भावना को बलवती बनाए रखते हैं । महान वे हैं जो अपने हृदय में क्षमा का सागर समेटे रखते हैं । दीर्घायु ने पिता के वचनों पर विचार किया ।

उधर सोया हुआ ब्रह्मदत्त स्वप्न देखता है कि उसका अंगरक्षक उसकी हत्या करने के लिये कटार हाथ में ले चुका है । यह घबराकर जाग जाता है और दीर्घायु के हाथ में तलवार देखता है। वह पूछता है-'तुम कौन हो? दीर्घायु कहता है-'तुम्हारे दुश्मन दीर्घेती का पुत्र हूँ । मेरे मन में विकल्प आया था कि मैं अपने पिता के हत्यारे की हत्या करके बदला ले लूँ, लेकिन मुझे अपने पिता का कहा गया वह वचन याद आ गया कि प्रतिशोध से बढ़कर तो क्षमा होती है । यही विचारकर मैंने तुम पर तलवार नहीं चलाई ।

अपने शत्रु के हाथ में तलवार देखकर ब्रह्मदत्त काँप गया और क्षमा माँगने लगा । उसने कहा-मुझे क्षमा कर दो । मैं चाहता हूँ कि हम अपने वैर विरोध की भावना को यहीं समाप्त कर दें और परस्पर मैत्री के भाव स्थापित करें । तब ब्रह्मदत्त ने अपनी पुत्री का विवाह दीर्घायु के साथ कर दिया और दहेज में कौशल का राज्य वापस दे दिया ।

याद रखने की बात है कि प्रतिशोध और वैर से महान् क्षमा होती है और वैभव से ज्यादा महान् त्याग होता है । यह जीवन का अटल सत्य है जो

सनातन है । यह कृष्ण, महावीर, बुद्ध, मोहम्मद जीसस के समय जितना सत्य था आज भी उतना ही सत्य है हम सबके लिये । जीवन में से प्रतिशोध का नाला हटाएँ और प्रेम की गंगा-यमुना बहाएँ । एक बार व्यक्ति प्रेम में जीकर देखे तो उसे पता लगेगा कि प्रेम में जीने का क्या आनन्द और मजा है ।

प्रेम प्रभावी तो कौन हावी ।

औरों के वचनों से मन को प्रभावित न करें, औरों की टिप्पणी से मन को कुंठित न करें, अपने मन को विचलित न करें । बुद्ध किसी गाँव से जा रहे थे । गाँव के लोगों ने उनकी बहुत निंदा की, अपशब्द कहे । गाँव वाले जितना बुरा बोल सकते थे, बोले । जब वे चुप हो गए तो बुद्ध ने कहा- क्या अब मैं अगले गाँव चला जाऊँ। लोग दंग रह गये कि हमने इन्हें इतना भला-बुरा कहा और ये जरा भी प्रभावित नहीं हुए बल्कि मधुर मुस्कान से पूछ रहे हैं कि क्या मैं अगले गाँव चला जाऊँ ? लोगों ने पूछा, हमारी गालियों का क्या हुआ ?

बुद्ध ने कहा-मैं जब पिछले गाँव में था तो लोग मेरे पास मिठाइयाँ लेकर आए थे । उन्होंने मुझे मिठाइयाँ देने की बहुत कोशिश की और तरह-तरह के प्रयास भी किये लेकिन मैंने किसी की मिठाई स्वीकार नहीं की । आप मुझे बताएँ कि वे मिठाइयाँ फिर किसके पास रहीं ? लोगों ने कहा-यह तो बच्चा भी बता देगा कि मिठाइयाँ उन्हीं के पास रहीं । बुद्ध ने कहा-तुम्हारी बात तुम्हें मुबारक पीछे के गाँव वालों ने मिठाइयाँ दीं, मैंने वे नहीं लीं अतः वे उन्हीं के पास रहीं, वैसे ही आप लोगों ने मुझे गालियाँ दीं और मैंने नहीं लीं, तो वह सब आप ही के पास हैं । जहाँ प्रेम और शांति का निर्झर बहा करता है वे ही लोग अप्रियता, कलह, कटुता और विरोध का वातावरण बनने पर भी उसे प्रेम और क्षमा में ढाल लिया करते हैं । महात्मा गांधी पानी के जहाज पर यात्रा कर रहे थे । उस यात्रा में एक अंग्रेज यात्री भी था जो गांधी जी से नाराज था । उसने अपशब्दों से भरा एक पत्र गांधीजी को लिखा और सोचा कि जब मैं उसे गांधी को दूँगा तो वे नाराज होंगे; झल्लाएँगे, क्रोध करेंगे । और भी क्या-क्या करेंगे, यह देखूँगा । गांधीजी के पास पत्र पहुँचा। सरसरी निगाह से उन्होंने पत्र देखा, पढ़ा उसमें लगी आलपिन निकाली ? उसे जेब में रखा और कागज पानी में फेंक दिया । गांधीजी के सहायक ने जब यह देखा तो उससे पूछे बिना न रहा गया कि उन्होंने पिन तो निकाल ली और पत्र क्यों फेंक दिया ? गांधी जी ने कहा-उसमें पिन ही एक काम की चीज थी जो मैंने रख ली । बाकी बेकार की बातें थी, सो मैंने फेंक दी । काम की बात हो तो उसे स्वीकार लो और बेकार की बातों को फेंक दें । ✦✦

इस संसार में जितनी इच्छाएँ है वे सब काँटे के समान हैं। वे जितनी बढ़ती जाती हैं, उतना ही मन पीड़ित होता जाता है। इसलिए इच्छाएँ पूर्ण करने की दौड़ में पड़ने के बजाय जितना है उसमें संतोष करने का प्रयत्न करो तो जीवन स्वतः ही तनाव मुक्त हो जायेगा।

मद एक ज्वाला

– श्री शिवप्रकाश अरोड़ा

मद एक अदर्शित ज्वाला होती है जो व्यक्ति के होश संभालने पर ही व्यक्त होने लगती है । व्यक्ति का ऐसा सोचना कि 'मैं कुछ हूँ' यही सोच अभिमान के रूप में, अहंकार के रूप में, घमण्ड के रूप में, गर्व के रूप में अथवा अहं के रूप में कही जाती है । यह माया के रजोगुण से उत्पन्न ऐसा विकार है जो अपने आप को दूसरों से बड़ा महसूस कराता है एवं अभिव्यक्त कराता है । किसी भी व्यक्ति का जन्म किसी भी जाति, कुल में हुआ हो, वो निर्धन हो या धनवान, शिक्षित हो या अशिक्षित, विकलांग हो या बलशाली, स्त्री हो या पुरुष, गाँव में हो या शहर में, नौकरी कर रहा हो या कोई व्यवसाय कर रहा हो या कोई तकनीकी कार्य रहा हो या किसी धार्मिक संस्था का प्रवक्ता हो या प्रवचनकर्त्ता हो या किसी भी संस्था या मिशन का नेता हो । हरेक में कोई न कोई योग्यता, दक्षता या दूसरों को प्रभावित करने वाली प्रतिभा अवश्य होती है । यह शक्ति या प्रतिभा शारीरिक बल के कारण, मानसिक बल के कारण, धन बल के कारण, बुद्धि बल के कारण, वाणी बल या आत्म बल के कारण हो सकती है । ऐसा कोई भी व्यक्ति जब अपनी तुलना किसी दूसरे से करता है, या जब उसकी प्रशंसा होती है, जब उसका सम्मान होता है, जब उसकी प्रसिद्धि होती है, तब वह यह महसूस करता है कि 'वह औरों से अधिक अच्छा है।'' इस विचार प्रक्रिया के फलस्वरूप मन में जो भाव उमड़ता है 'वही अहंकार है, वही मद है । इससे शायद ही कोई अछूता रह पाता है । उसकी इच्छा हमेशा अधिक से अधिक मान सम्मान या प्रतिष्ठा पाने की रहती है, अपने क्षेत्र में वह सर्वोच्च पद पाने की कामना करता है एवं प्रयत्नशील रहता है तथा दूसरों से अपनी प्रशंसा भी करता रहता है ।

परम पूज्य गुरु महाराज का कहना है:-

'मद मिथ्या गर्व या झूठे अभिमान का नाम है। काम, क्रोध, मोह, लोभ यह चारों अवगुण ऐसे स्थूल हैं कि जिनके उदय होते ही मनुष्य पहिचान लेता है कि मेरे अन्दर इस समय अमुक गुण प्रबल हो उठा है । मगर यह पांचवाँ अवगुण इतना सूक्ष्म होता है कि लगातार वर्षों इसके नीचे दबे रहने पर भी आदमी यह नहीं जान पाता कि मेरे सिर पर कोई दुश्मन सवार है और वह मुझे मारने की ताक में लग रहा है।'

परम संत श्री कबीर साहब का कहना है :

अहं अगनि हिरदै जरै, गुरु सों चाहै मान ।
तिनको जम न्यौता दिया, हो हमरे मिहमान।।

अहंकार की आग हृदय में जल रही हो तो अहंकारी व्यक्ति गुरु से भी अधिक सम्मान चाहता है । ऐसे अभिमानी जनों को मृत्यु रूपी दुःख-संकटों एवं कुवासनाओं ने खुला निमन्त्रण दिया है कि 'आओ हमारे मेहमान बनो ।'

मद अभिमान न कीजिये, कहैं कबीर समुझाय।
जा सिर अहं जु संचरे, पड़ै चौरासी जाय ।।

श्री कबीर साहब समझाते हुए कहते हैं कि इस मद-अभिमान को मत करो । इसका भली-भांति त्याग कर दो । जिसके मस्तिष्क में इस अहंकार का प्रवेश हो जाता है, वह अपनी सुध-बुध खोकर इस संसार-रूपी चौरासी के चक्कर में जा पड़ता है ।

मद के प्रकार :

मद या अहंकार कई प्रकार का हो सकता है क्योंकि अपने को दूसरे से ज्यादा योग्य मानना एवं दूसरों को तुच्छ समझना किसी भी क्षेत्र में हो सकता है, उदाहरण के रूप में 1. जन्म जाति कुल का 2. बल का 3. बुद्धि का 4. सौन्दर्यता का 5. शैक्षणिक योग्यता का 6. व्यवसायिक योग्यता का 7. सम्मोहन शक्ति एवं अच्छे वक्ता का तथा मानसिक शक्तियों का 8. धन बल का 9. दान पुण्य देने का 10. विभिन्न संस्थाओं में सेवा प्रदान करने एवं पद धारण करने का 11. जप, तप व तीर्थ यात्राऐं करने व करवाने का 12. राजनीतिक पद प्रभाव एवं परिचय का 13. धार्मिक आयोजन करवाने का 14. धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्थाओं में पदाधिकारी होने अथवा प्रवचन देने का 15. शिष्य होने का 16. गुरु होने का 17. योगी अथवा ऋषि होने का 18. धर्म मद 19. ज्ञान मद 20. राजकीय या निजी क्षेत्र में उच्च पद धारण करने का 21. विभिन्न क्षेत्रों से सम्मानित होने का इत्यादि इत्यादि। इसके अतिरिक्त और भी बहुत कारण हो सकते हैं जिनके कारण लोग अपनी शेखी बघारते नहीं थकते हैं । मद का परदा इतना सूक्ष्म होता है कि व्यक्ति यह स्वीकार ही नहीं करता कि उसे अभिमान है वह तो यही कहेगा कि यह मेरा स्वाभिमान है । जहां भी व्यक्ति की अभिव्यक्ति यह होती है कि यह 'मैंने किया' यानि वह अपने आप को कर्त्ता घोषित करता है यानि कि उसमें अहं है । जहां द्रष्टा भाव है, अकर्त्ता भाव है, अपने संरक्षक गुरु को समर्पित कर कोई काम करता है, उनकी कृपा को ही कर्मफल-क्रिया का आधार मानता है, तब यह कहा जा सकता है कि मद का अभाव है ।

मद से होने वाली हानियाँः

मदयुक्त व्यक्तियों में मल, विक्षेप व आवरण परदे घने होने से निम्न दोष पाए जा सकते हैं :

1. अपने दोष नहीं दिखनाः

सामान्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति में कुछ गुण व कुछ दोष होते हैं । मदयुक्त व्यक्ति को अपने दोष दिखाई नहीं देते, वह दूसरों के दोषों को देखता है, निन्दा करता है निन्दक कभी भी ईश्वर का प्यारा नहीं हो सकता । उसकी आत्मज्ञान की प्राप्ति की अभिलाषा में यह सबसे बड़ी रुकावट मानी गई है ।

2. दूसरों की प्रशंसा से दुःखी होनाः

मदयुक्त व्यक्ति या अभिमानी व्यक्ति न तो दूसरे के गुण देख पाता है न ही उसे दूसरों की प्रशंसा अच्छी लगती है । प्रशंसा सुन कर उसे ईर्ष्या होती है, वह उसकी विपरीत अवस्था उत्पन्न करने के लिए न करने योग्य काम करने लगता है, एवं अपने कर्म बन्धनों को और बढ़ाता है ।

3. दूसरों का अनादर व अपमान करने के लिए आतुर रहनाः

अभिमानी व्यक्ति किसी भी प्रसंग में मौका

मिलने पर दूसरों को अनादर करने या उसका अपमान करने में नहीं हिचकिचाता है । इससे परिवार में, समाज में एवं अन्य कार्य स्थली पर कलह होने की पूर्ण संभावना रहती है, लोग सामने तो कहने में भय खाते हैं परन्तु पीठ पीछे उनके स्वभाव के बारे में चर्चा करने में नहीं हिचकिचाते। व्यक्ति द्वारा किए गए अपमान एवं अवांछनीय कार्यों के कर्म फल से व्यक्ति बच नहीं सकता क्योंकि प्रत्येक को अपनी करनी की फसल तो काटनी पड़ती है ।

4. आवागमन के चक्कर की निरन्तरता:

मद मस्ती में किये गए कर्मों में कर्त्तापन का भाव अवश्यमेव रहता है, उससे अनेक जन्मों का बंधन स्वत: ही बन जाता है ।

5. अज्ञात शोक व दु:ख के अवसर आना:

अभिमान में किये गए कार्यों से किन-किन को कितनी पीड़ा होती है किस-किस द्वारा दुराशीष दी जाती है, मालुम नहीं पड़ता। उनके कर्म फलों के परिणाम स्वरूप अचानक शोक, दु:ख व दुर्घटनाएँ घटित होती रहती हैं, जीवन संघर्षमय एवं कलह युक्त बीतता है ।

श्रीरामचरितमानस के उत्तरकाण्ड 73 (ख) में बताया गया है :

संसृत मूल सूलप्रद नाना ।
सकल सोक दायक अभिमाना ।।

अभिमान जन्म मरण रूप संसार का मूल है और अनेक प्रकार के क्लेशों तथा समस्त शोकों को देने वाला है ।

मद से मुक्ति केवल गुरु कृपा से ही संभव है, क्योंकि जब तक गुरु अन्तर दृष्टि नहीं खोलता है तब तक उसे अपने दोष दिखाई नहीं देते न ही कर्त्तापन का बोध जाता है । अत: उनकी कृपा के लिये उनके द्वारा बताई गई साधना को नियमित करना एवं समय-समय पर उनके सम्मुख होना आवश्यक होता है- ताकि उनकी सुरति की धार मल विक्षेप व आवरणों को चीर कर हृदय को निर्मल बना सके । परम पूज्य गुरु महाराज जी से यही प्रार्थना है कि हम आपकी शरण में हैं जैसे कैसे भी हैं आपके हैं आप ही हमारा उद्धार कीजिये। ✦✦

कल्याण-पथ

- आत्म अनुशासन का आधार ईश्वरीय गुण जैसे मानव मात्र से प्रेम की भावना, सबकी भलाई की भावना, सेवा की भावना, गुरु के नाम को बदनाम न होने देने की भावना,सच्चाई से जीवन व्यतीत करने की भावना, व्यवहार में ईमानदारी बरतने की भावना आदि है । जब साधक में ये भावनायें उभरने लगती हैं तभी वह आत्म अनुशासन का भी पालन कर पाता है । आत्मानुशासन चाहे नया साधक हो या पुराने से पुराना सबके लिए आवश्यक है ।
- दूध में पानी मिल जाने से पानी भी दूध स्वरूप हो जाता है और उसका मूल्य बढ़ जाता है । इसी प्रकार गुरु में मिल जाने पर साधारण मनुष्य भी महात्मा हो जाता है ।

- परम संत श्री डॉ. बृजेन्द्र कुमार जी

परम सुख

— श्रीमती गीता सिंह

जीवन में हम सभी सुख और शान्ति चाहते हैं, मगर सच्चा सुख क्या है, शायद हममें से बहुत लोग नहीं जानते । सुखी जीवन से हमारा तात्पर्य यही होता है कि हमें किसी चीज का अभाव न हो, कोई दुःख या तकलीफ न हो । हम सबके साथ मिलकर सदा खुशहाल रहें, सानन्द रहें, यही सुखी जीवन है । निश्चय ही ऐसा जीवन सुखी जीवन है और ऐसा होना बड़ा सौभाग्य है । मगर संसार एक ऐसा कर्म क्षेत्र है, जहाँ सत् रज, तम की त्रिविध बयार सदा चलती रहती है और परिवेश को आन्दोलित और प्रभावित करती रहती है । गुणों की बयार से जीवन में उथल-पुथल मचती रहती है । सोचा था कुछ होने लगता है कुछ । सुख-शान्ति में विघ्न आ जाता है । दवा-दुआ, प्रयास होते हैं, बिगड़ा खेल फिर बनता है, आशा की किरणें दिखायी देती हैं । इस तरह जीवन आशा-निराशा, सुख-दुःख, धूप-छाँव और विरह-मिलन की आँख-मिचौनी खेलता हुआ आगे बढ़ता रहता है । वास्तव में जीवन की परिभाषा यही है । अर्थात् जीवन वह नहीं हैं कि सिर्फ सुख ही सुख रहे, या कि सिर्फ दुःख ही दुःख रहे । जीवन तो अच्छा वह है कि सुख भी रहे, दुःख भी रहे, भाव भी रहे, अभाव भी रहे । सुख-दुःख तो सगे भाई हैं, साथ रहना ही ठीक है । जीवन में एकरसता नहीं समरसता चाहिये, अंधकार न हो तो प्रकाश की क्या कीमत इसीलिये कहा है-

''मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुःख ।
सुख-दुःख की आँख मिचौनी,
खोले जीवन अपना मुख ।।''

मगर संत जन कहते हैं कि सच्चा सुख एक अलग चीज है । जब आदमी को उसका बोध हो जाता है तब छोटे-मोटे दैहिक सुखों की अहमियत नहीं रह जाती । यह सच्चा सुख आत्मिक सुख है । इसमें आत्मा प्रसन्न रहती है । शरीर कुछ कष्ट में हो तब भी प्रसन्न, भाव हो या अभाव हो तब भी प्रसन्न और सन्तुष्ट रहती है । यह तप-त्याग, सेवा और प्रेम का चमत्कार है । इसमें आत्मा सर्वत्र सबमें अपना ही प्रतिबिंब देखती है । देखा गया कि एक आदमी सात शाम का भूखा था । जब उसके सामने भोजन की थाल आयी तो एक आठ शाम का भूखा मनुष्य सामने आकर भोजन की याचना करने लगा । उस व्यक्ति ने खुशी-खुशी वह भोजन उसे अर्पित कर दिया । उसका शरीर तो भूखा ही रहा, परन्तु

आत्मा परम प्रसन्न हो उठी । तप, त्याग, सेवा और प्रेम आत्मा की नैसर्गिक खुराक है जिनके अन्दर ये चीजें आ जाती हैं, वे भूखे रहकर भी प्रसन्न रहते हैं । यदि सारे सुखों का अम्बार लगा हो, मगर आत्मा किसी बात से दु:खी हो या ग्लानि से भरी हो तो भला वह सुख कैसा ?

इसी को श्रीमद्भगवद्गीता में सात्विक सुख कहा गया है जो भजन, ध्यान और गुरुकृपा से प्राप्त होता है । भगवान कहते हैं कि अर्जुन प्रारंभ में तो वह असंभव, कठिन, नीरस और विष के समान कड़वा प्रतीत होता है, मगर बाद में वह अमृत-सा मधुर फल प्रदान करता है। आत्मानन्द को प्राप्त कर आत्मा इतनी प्रसन्न हो जाती है जैसे अगाध जल में पहुँचकर मछलियाँ। कहा है- सुखी मीन जहँ नीर अगाधा..." और भी कहा है-

"भजन करे ते सब सुखी क्या निर्धन क्या धनवान।
रानी मीरा भीलनी दोऊ एक समान ।।"

अर्थात् भजन का जो सुख है, वह निर्धन, धनवान नहीं देखता, पढ़ा वे पढ़ा उच्च-नीच जाति-पाँति यह सब नहीं देखता । आत्मा के प्यार में सब एक हैं । इसे उत्तम कोटि का सुख माना जाता है ।

गीता में दूसरे प्रकार के सुख को राजसी सुख कहा है । यह सांसारिक भोग-वासनाओं का सुख है। इंद्रियों का विषयों से संयोग होने पर जो सुख प्राप्त होता है, वही रजोगुणी या राजसी सुख कहलाता है । अच्छा खाने पीने का सुख, अच्छा पहनने-रहने का सुख, अच्छा देखने-सुनने का सुख, अच्छे स्पर्श का सुख, विषय-वासनाओं का सुख आदि सभी दैहिक सुख हैं। जो क्षणिक हैं इनमें वास्तविक सुख नहीं, बल्कि सुख का आभास मात्र होता है । कभी-कभी आत्मा इसे स्वीकार नहीं करती, मगर इंद्रियों का राजा मन अपनी मनमानी किए जाता है और आत्मा की परवाह नहीं करता । जीवात्मा दु:खी होती है, पर कुछ कर नहीं पाती । वह बुरी तरह फँस जाती है, क्योंकि कर्मों का भोग तो उसे ही भोगना पड़ता है । उन्मत्त भौंरे की तरह रस पान करते-करते जैसे वह उसी पुष्प में कैद हो जाता है । इसी क्षण भंगुर सुख पर जीव अपना सर्वस्व न्योछावर कर खाली और निहंग रह जाता है । दर-दर का भिखारी बन जाता है । यह सुख प्रथम तो अमृत-सा मधुर मालूम पड़ता है, परन्तु परिणाम बड़ा भयंकर विषभरा होता है । संत महात्मा इनकी मूर्खता पर रोते हैं । कष्ट और अपमान झेलकर भी उन्हें जगाते और चेताते रहते हैं, फिर भी वे चेतते नहीं, जागते नहीं-

सुखिया सब संसार है, खाये और सोये ।
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोये ।।

गीता एक तीसरे सुख की ओर इशारा करती है, जिसे तामसी सुख कहते हैं । जहाँ पर निद्रा और आलस्य का राज हो, प्रमाद और अकर्मण्यता हो, जड़ता और निराशा का अंधकारमय जीवन हो, समझो कि वह तमोगुणी क्षेत्र है । यहाँ व्यक्ति में उत्साहहीनता और दीर्घसूत्रता दिखायी देती है।

काम पड़ा हुआ है, मगर चारपाई पर करवटें बदल रहे हैं, अनेकों काम हैं, पर न कोई लिस्ट है, न क्रम । जीवन में क्या करना है, क्या बनना है, कोई उद्देश्य नहीं। जड़ पत्थर की भाँति पड़े हैं, मगर वे इसी में अपना बड़प्पन मानते हैं । यहाँ तो न प्रारंभ सुखद, न अंत सुखद, पूरी विनाश लीला ही है । इससे रजोगुणी व्यक्ति अच्छा है जो कम-से-कम कर्मों और भोगों के प्रति जागरूक और क्रियाशील तथा संचय के प्रति तत्पर रहता है । मगर तमोगुण में तो आलस्य, प्रमाद और अकर्मण्यता के घुन अन्दर ही अन्दर चाट खाते हैं और जीवन व्यर्थ हो जाता है ।

पूज्य गुरुदेव ने एक और सुख का बोध कराया है जिसे परम सुख कहते हैं । इसमें सांसारिक और पारमार्थिक सुखों में एक संतुलन की बात कही गयी है । उन्होंने कहा कि सांसारिक सुखों का एकदम त्याग नहीं करना है, उनका अच्छी तरह भोग करो, मगर त्यागपूर्वक! उसमें इतना लिप्त मत हो जाओ कि परमार्थ को भूल जाओ या कि परमार्थ की ओर भी इतना न खिंच जाओ कि सांसारिक सुखों से एकदम वंचित हो जाओ । इस संसार को माया जानकर त्यागने का उपदेश नहीं दिया, बल्कि माँ मानकर उसके वात्सल्य रस का पान करने की सलाह दी । उन्होंने कहा कि यह संसार भजन में बाधक नहीं साधक है । यह संसार माँ प्रकृति का बस्त्राभूषणों से अलंकृत प्यारा मनोहारी रूप है । यदि ईश्वर आनन्द है तो यह माँ का सुन्दर व्यक्त स्वरूप परमानन्द है । जो नासमझ हैं, वही आसक्ति और मोहवश इसे बंधन बना डालते हैं और त्याज्य और हेय मानकर इसे छोड़ भागते हैं मगर जो समझदार हैं वह जानते हैं कि माँ के बिना बच्चा अनाथ और निराश्रय ही तो है । जिस माँ ने जन्म दिया, पाला-पोषा, बड़ा किया, उसे ही जीवन से निकाल दिया तो फिर बचा ही क्या? हम इसे त्यागकर जा भी कहाँ सकते हैं, सर्वत्र तो उस माँ का ही पसारा है । हम छोड़ते हैं, तब भी वह नहीं छोड़ती, वह माँ जो है ।

एक बच्चा माँ की गोद से उतरकर खिलौनों से खेलने लगा । माँ भी पास में बैठी प्रसन्न हो रही थी। कुछ देर बाद जब उसका मन खिलौनों से भर गया तो माँ की ओर देखा और खिलौनों को वहीं छोड़कर माँ की गोद में आ बैठा । पहले खिलौनों का आनन्द था, अब माँ की गोद का ब्रह्मानन्द मिल रहा है । कुछ देर बाद बच्चे की नजर फिर खिलौने पर पड़ी, वह गोद से उतर पड़ा, लपककर खिलौने को उठाया और माँ की गोद में आ बैठा । अब वह खिलौने से खेल भी रहा है, साथ ही माँ की गोद का भी अद्भुत आनन्द ले रहा है । इसमें दोनों का सम्यक आनन्द है, इसलिये यह परमानन्द है । व्यवहार में परमार्थ और परमार्थ में व्यवहार ही गुरु महाराज का आदर्श रहा है । यह रामाश्रम सत्संग जीवात्मा को यही परम सुख प्रदान करता है । ✦✦

गीत

— डा. श्याम सुन्दर सौनकिया

मैं कुछ नहीं, न मेरा कुछ है, सब कुछ प्रभु का है ।
सुरति डोर अनवरत नाथ की ओर लगाये हूँ ।।
भाव-सुमन श्री गुरुचरणों में सविनय अर्पित हैं ।
अर्चन-वंदन दीप हृदय में नित्य जलाये हूँ ।।

सत्संगों में मन वांछित अहसास उभरता है ।
पर अन्तर में सतत् न टिकता बहुत अखरता है ।।
दीन भिखारी शरणागत झोली फैलाये हूँ ।
सुरति डोर अनवरत ....

युग की वक्र विलक्षण गति तन-मन भरमाये है ।
जीर्ण-वीण-उर कुंठित अनमिल सुर सरसाये है ।।
केवल सद्गुरु कृपा-किरण की आश लगाये हूँ ।
सुरति डोर अनवरत. ....

सब कुछ दिया अयाचित प्रमुदित, हर्षित अन्तर्मन ।
करुण पुकार करूँ गुरु-चरणों में शत कोटि नमन ।।
विगलित हृदय आद्र नयनों से नीर बहाये हूँ ।
सुरति डोर अनवरत . ...

भव-सागर के प्रबल थपेड़े, हे गुरुवर मेरे ।
अब सर्वस्व समर्पित करके चरण-शरण तेरे ।।
प्रबल प्रेम वश बिलख-बिलख गुरु के गुण गाये हूँ ।।
सुरति डोर अनवरत. ....

मन में दृढ़ विश्वास, हृदय में अविरल शांति बहे ।
हर्ष-विषाद विलय जब से प्रभु पावन चरण गहे ।।
प्रभु की प्रेम सरस धारा में आज नहाये हूँ ।।
सुरति डोर अनवरत. ....

सत्य प्रसंग :-

भय और भरोसा

— श्री बालादत्त जोशी

भय या आशंका अपने इष्ट के विस्मरण के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं, आत्म-प्रेरणा की अवहेलना से भय और भी भयावना हो जाता है । आत्मानुभूति के अभाव में ही अनेक संशय और भ्रान्तियों को जन्म मिलता है । प्रभु की शक्ति जिससे जिस कार्य की अपेक्षा करती है जीव उसे भुला देने की नादानी करता है । उस परमसत्ता की सर्वव्यापकता का आभास करने वाले की उपस्थिति की भाँति उसकी अनुपस्थिति भी उसके अस्तित्व का सदा स्मरण कराती रहती है । ऐसों के लिए वह दूर देश में रहते हुए भी सामने हैं । उसके मार्ग पर चलने वाला उसके आश्रय का त्याग कदापि नहीं करता । सुख-दु:ख अथवा अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों को उसके सहारे ही पार करता है ।

वस्तुत: इष्ट का निरन्तर स्मरण, हर समय उससे भय खाते रहना तथा उसके अतिरिक्त दूसरे का भरोसा न करना जीव को संसार में निर्भय बना देता है । विपरीत मार्ग पर चलते यदि डर लगता है तो यह अन्त: स्थित परमात्मशक्ति ही है जो त्याज्य पथ पर जाने से रोकती है । सर्वत्र उस सर्वशक्तिमान की प्रतीति का अभ्यास निर्भीकता की ओर बढ़ाता है । इस स्थिति में संसार की कोई भी शक्ति उसे सन्मार्ग से विचलित नहीं कर सकती । प्राकृतिक अथवा मानवोत्थित आपदाऐं उसे लक्ष्य से नहीं डिगा सकतीं । प्रभु की स्मृति बराबर बनी रहने से उसकी मुश्किलें आसान हो जाती हैं । प्रभु की याद भी वही कर सकता है जो उसे अपना परम हितू व सहारा जानता व मानता है । उसकी कृपा व सहायता की सभी दुहाई देते देखे जाते हैं । परन्तु यथार्थ में विरले ही स्वयं को उसके आश्रय में देने में समर्थ हो पाते हैं । संसार में वही भयभीत होता है जिसका कोई सहारा या आधार नहीं होता । सहारा मिलते ही व्यक्ति निश्चित हो जाता है । जिसने दृढ़ता से उसका दामन थाम लिया है वही प्रत्येक दशा में उसकी याद नहीं भूलता। अन्यथा प्रतिकूल परिस्थिति में मन त्रसित होकर होश खो बैठता है, ईश्वर की याद छूट जाती है । उसकी दया ही याद दिलाने में सहायक होती है ।

आश्रय-भाव या भरोसा स्वयं को प्रभु को सौंप देने पर ही पुष्ट होता है । इष्ट के प्रति यह प्रेम अपनत्व भाव बढ़ाता है तथा अपना सर्वस्व उस पर न्यौछावर कर देने को विवश कर देता है । छोटा बालक मां के आश्रय में प्रसन्न व निश्चिन्त रहता है । वालवत् भाव ही विश्वसनीय होता है । प्रभु से प्रेम का दावा करने वाला दुनियावालों से आशा लगाये तो ऐसा प्रेम भरोसे

योग्य नहीं होता । उसके भरोसे अपना कार्य करने वाले तथा दूसरी ओर न ताकने वाले के बिगड़े काम भी बन जाते हैं । साथ ही उसकी सम्भाल का दायित्व भी प्रभु का हो जाता है । उसकी शरण गहने वाले को प्रतीत हो या न हो दु:ख-भंजन के कुछ न कुछ वानग वन ही जाते हैं । इस आशय को एक साधक के साथ घटी घटना पर चरितार्थ करना समीचीन होगा ।

देश में आपातकाल के समय वह सेवक कोटा (राज.) के पटवारघर में स्थानान्तरित हुआ था । वहाँ भीलों की जमीन पर प्रभावशाली व्यक्तियों ने अधिकार कर रखा था । भीलों द्वारा जमीन पर कब्जा दिलाने की प्रार्थना पर साधक ने उनसे जिला कलक्टर को पत्र लिखने को कहा। कलक्टर साहब ने उसे अधिकृत कर तुरन्त कब्जे की कार्यवाही सुनिश्चित करने का आदेश दे दिया । मेरी ओर से नोटिस पाकर वहाँ के रसूखदार लोग भड़क गये और आकर तरह-तरह की धमकी देने लगे । गुरु महाराज की प्रेरणा तथा भरोसे से उनकी परवाह न कर पुलिस बल बुलाकर भीलों को उनकी जमीन पर कब्जा दिलवा दिया गया। उसी क्षेत्र के तत्कालीन सत्तासीन एक मन्त्री महोदय ने कुपित होकर उस साधक को पदच्युत करा दिया। नौकरी चले जाने से पारिवारिक तथा आर्थिक स्थिति डाँवाडोल होने लगी । शहर के अच्छे स्कूलों में प्रवेश पाये बच्चों को दूर गाँव भेज दिया तथा अपने व बच्चों के भरण-पोषण के लिए कोटा शहर का मकान बेचने को वाध्य होना पड़ा । इस पीड़ा दायक समय को यों ही झेला गया, गुरु महाराज की कृपा से उच्च पदस्थ एक सत्संगी सज्जन के मार्ग-दर्शन से कमिश्नर साहब के यहाँ अपील की कुछ समय की प्रतीक्षा के बाद उन्होंने तीन वर्ष की सेवा को अवैतनिक मानते हुए पुनः मुझे सेवा में लेने का आदेश कर दिया । हाई कोर्ट में अपील करने पर अवशेष वेतन भी मिल गया । सब उन्हीं की कृपा का ही परिणाम था । उनकी इस अहैतुकी कृपा के लिए क्या कहा जा सकता है । निम्न दोहा उनकी अकारण कृपा-वृष्टि का प्रमाण देता है-

जाको राखे साइयां मारि सके न कोइ ।
वाल न वांका करि सके जो जग बैरी होइ ।।

गुरु महाराज से प्रार्थना है कि वे सदा अपने आश्रय में बनाये रखें तथा हर विषम स्थिति में भी अपनी याद दिलाते रहें। ✦ ✦

आलोक-किरणें

गुरु शरीर नहीं होता बल्कि शरीर के अन्दर रहने वाला चैतन्य पुरुष (आत्मा) होता है । इसी गुरु की आत्मा से प्रकाशवत व आनन्दमयी धार हर समय फूटती रहती है, इसी दिव्य तेजोमयी धार को चरण-रज कहते हैं। अपने हृदय के पात्र पर संकल्प से इस रज को रोजाना रगड़ो, वह दमकने लगेगा, उसकी तारीकी (कालौंछ) मिट जायेगी, वह साफ-सुथरा बन जायगा । गुरु की चरण-रज से हृदय को माँज डालो। गुरु की सुरति की धार से कनेक्शन जोड़ के अपने हृदय को प्रकाशवान बना डालो, भगवान बिना बुलाये ही वहां आ विराजेंगे, वह तो ऐसे स्थान की तलाश में ही रहते हैं, किसी दूसरी क्रिया की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी ।

— **परमपूज्य श्री गुरुदेव**

परमात्मा के साक्षात्कार हेतु

— श्री रामफल राम

सभी महापुरुषों का मत है कि आत्म ज्ञान की प्राप्ति से ही मानव जीवन को सार्थकता प्राप्त हो सकती है क्योंकि इसके अभाव में चाहे संसार की सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं से जीवन भरपूर ही क्यों न हो, न तो संसार में रहने की कला आ सकती है और न मनुष्यत्व की सुंगधि ही आ सकती है । ऐसे में जीव के अन्दर जिज्ञासा उठना स्वाभाविक है कि इस श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति हेतु हमें करना क्या है?

प्रथम तो इस ज्ञान की प्राप्ति परमात्मा की इस सृष्टि में मानव तन धारकों को ही होती है । अत: हमारे लिए यह बहुत ही सौभाग्य की बात है कि परमात्मा ने बड़ी ही असीम कृपा कर यह दुर्लभ नर तन उपलब्ध करा दिया है । दूसरी चीज सभी धर्म ग्रन्थों एवं शास्त्रों में कहा भी गया है कि परमात्मा के साक्षात्कार के पहले जिन पायदानों से होकर गुजरना पड़ता है, वह हैं- कर्म, उपासना और ज्ञान । कर्म एवं उपासना की पूर्णता सिद्ध किये बिना ज्ञान हो ही नहीं सकता । उसी तरह आत्मा के राज्य में प्रवेश हेतु शरीर पूर्ण स्वस्थ एवं मन का पूर्णशान्त एवं निश्चल होना जरूरी है । चूँकि शरीर स्थूल है अत: स्थूल शरीर की स्वस्थता की मात्रा का आंकलन स्थूल दृष्टि से थोड़ा लगाया जा सकता है, मगर मन तो अति सूक्ष्म है और यह भी बड़ी विडम्बना है कि सांसारिक वातावरण में हर समय ही रहने के कारण अनेक प्रकार के विचारों एवं विकारों की चादर को अनायास ही अपने ऊपर लपेटता हुआ उसी का स्वरूप ही बन जाता है और इस स्वरूप की स्थिति में भय, दु:ख, अशान्ति और अज्ञानता के सिवाय और कुछ है ही नहीं । पर जीव तो चाहता है अमरता, शाश्वत् सुख, शाश्वत् शान्ति, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द या यों कहिये कि अपना स्वाभाविक स्वरूप–

''ईस्वर अंस जीव अविनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ।।''

ऐसी स्थिति से जीवन की यात्रा में गुजरते हुए कहीं एक संकेत स्वरूप आवाज आती है–''संत मिलन सम सुख कोउ नाहीं ।'' लेकिन संत का मिलना तो तभी सम्भव है–''जव द्रवहिं दीनदयाल राघव साधु संगत पाइये।'' फिर एक प्रश्न उठता है कि दीनदयाल को कैसे द्रवित किया जाय ? अकसर हम अपनी अज्ञानता के कारण उनको सांसारिक वस्तुओं को भेंट कर द्रवित करना चाहते हैं और वह भी हमारे ऊपरी भावों का आदर करते हुए उसे स्वीकार भी कर लेते हैं पर द्रवित नहीं होते । वास्तव में वह द्रवित होते हैं उसी समय जब जीव अपने को हर तरह से असहाय एवं निर्बल समझ ललचायी अश्रुपूरित आंखों से सिर्फ और सिर्फ उसी एक की तरफ देखता है, साथ ही साथ सिर्फ और सिर्फ उसी को अपने अन्तर की व्यथा सुनाता है । तब ही वह दीनदयाल जो

अधिकतर तो अपनी अव्यक्त निराकार अवस्था से पूरी सृष्टि एवं उस पर आश्रित समस्त जीवों का सुव्यवस्थित संचालन करता हुआ उसी की करुण प्रार्थना पर उसी के उद्धार के लिए नराकार स्वरूप धारण कर उसके समक्ष उपस्थित हो अपना सानिध्य प्राप्त करा देता है । और अपेक्षा करता है कि जीव पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उसे ही अपने आपको पूर्णतः दीन अवस्था में ला सौंप दे जैसे मिट्टी कुम्हार को या पत्थर की शिला कुशल मूर्तिकार को । चूँकि नर तन धारी जीव अपने को लाख प्रयत्न करने पर मिट्टी या पत्थर की भाँति निर्जीव तो नहीं बन सकता। अतः जरूरत है पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उस महापुरुष के आदेशों का पूर्णतः पालन करते रहने के सफल प्रयास की।

वास्तव में वर्तमान में सुलभ-दुर्लभ मानव शरीर की क्षण भंगुरता को समझना हमारी उत्कृष्ट बुद्धि का द्योतक होगा और बड़े ही सौभाग्य की बात भी है समर्थ गुरु के अनुपम विलक्षण दरबार का मिलना । अगर ऐसे शुभावसर की सदुपयोगिता हेतु जीव उपर्युक्त बातों को हृदयांगम करने का पूर्ण प्रयास करने लगेगा तो जैसा कहा गया है– ''ए सब साधन ते नहिं होई । तुम्हरि कृपा पाउ कोई कोई ।'' निश्चय ही उस महापुरुष की कृपा से मन विचार रहित एवं विकार रहित हो ज्ञान की भूमिका में पहुँचकर साक्षात्कार करने में सफल हो सकेगा और तब उसे भय, दुःख, अशान्ति एवं अज्ञानता रहेगी । अब वह हर समय शाश्वत् सुख, शाश्वत् शान्ति एवं पूर्ण आनन्द की खुशबू से वातावरण को सुगन्धित रखता हुआ अपने ''चेतन अमल सहज सुखरासी'' की स्वाभाविक अवस्था में स्थित हो जायेगा ।

आइये नित्य बन्दनीय प्रातः स्मरणीय समर्थ गुरु परम पूज्य श्री गुरुदेव से ही परमात्मा का साक्षात्कार कराने वाली-पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ महापुरुष के आदेशों का परिपूर्ण पालन करने वाली-उनके ही मुखार विन्दु से प्रस्फुटित वाणी का अवलोकन करें–

''जहाँ तक हमको याद है हमने कभी उनकी आज्ञा भंग नहीं होने दी और उनके बताये हुये साधन को नहीं छोड़ा, पूर्ण श्रद्धा और निष्ठा से उसको किये चले गये । वह लाभ दे रहा है या हानि, इस नतीजे की ओर हमने कभी आँख उठाके भी नहीं देखा, तबियत जमती है या नहीं, आनन्द मिलता है या नहीं, इस पर कभी नहीं विचारा। अन्धविश्वास से उनका हुक्म बजाते रहे और उसी का फल आज सबके सम्मुख है ।'' इसका परिणाम यह हुआ कि आपने दादा गुरु से तदरूपता तो प्राप्त कर ही ली, साथ ही साथ अध्यात्म विद्या के पूर्ण धनी हो गये और इस सृष्टि के आकाश मण्डल पर अपने तेजोमय स्वरूप से चमकते हुए पूरे विश्व के अशान्त एवं दुःखी तथा अज्ञानता के अंधेरे में भटकते हुए जीवों को आवाज देकर कह रहे हैं– ''गुरु ने अपार आनन्द भण्डार की कुंजी दे दी है, तुम जितना ले सको इसमें से ले लो, तुम जितना खींच सको इसमें से खींचो । गुरु ने प्रेम और शान्ति के श्रोत हमारे अन्दर जारी कर दिये हैं, ज्ञान और भक्ति की गंगा प्रवाहित कर दी है । और इस प्रेम जल में डुबकियाँ लगाओ और अपने पात्रों को गंगा जल से भरके घर को चले जाओ । ऐसा करते समय अगर कोई तुम्हारा हाथ पकड़े या रोके तो शिकायत करो। ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त करो, आकर्षण करने की क्रिया को सिद्ध

करो और उसके द्वारा अपना कल्याण करो ।'

रामश्रम सत्संग (मथुरा) के प्रवर्तक समर्थ गुरु परम पूज्य श्री गुरुदेव जी की महान कृपा ही है कि एक अति ही सरल युगानुकूल आन्तरिक सत्संग की साधना की क्रिया समाज को दी है जिसको नियमित रूप से कर आज लाखों ही भूले भटके लोग अपने जीवन की दशा एवं दिशा में अभूतपूर्व परिवर्तन पाकर अपने सुन्दर व्यवहार की सुगन्धि से समाज को गौरवान्वित तो कर ही रहे हैं साथ ही साथ समर्थ गुरु के दस सारभूत सिद्धान्तों के आलोक में इस भव-सागर में जीने की सुन्दर कला से अपने मानव जीवन को सार्थकता भी प्रदान कर रहे हैं । गुरु महाराज सभी को अपना आशीर्वाद प्रदान करें, यही उनके श्री चरणों में विनम्रतापूर्ण प्रार्थना है ।

✦✦

प्रेरक-प्रसंग

बड़े होने का अहंकार सीखने नहीं देता

- अनाम स्वामी

राजा त्रिविक्रम को पढ़ने-लिखने का बहुत शौक था। इसके लिए उन्होंने एक शिक्षक की व्यवस्था की। शिक्षा लेते-लेते कई महीने बीत गए, मगर कोई लाभ नहीं हुआ। गुरु तो खूब मेहनत करते थे, परंतु त्रिविक्रम को कोई फायदा नहीं हो रहा था। वह परेशान था। गुरु की प्रतिभा और योग्यता पर सवाल उठाना भी गलत था, क्योंकि वह एक प्रसिद्ध और योग्य गुरु थे। अंत में एक दिन रानी ने त्रिविक्रम को सलाह दी कि आप इस सवाल का जवाब गुरु जी से ही पूछें।

त्रिविक्रम ने हिम्मत करके गुरु जी से पूछा, गुरुवर, महीनों से मैं आपसे शिक्षा ग्रहण कर रहा हूँ, पर मुझे लाभ नहीं हो रहा है। ऐसा क्यों है? गुरु ने शांत स्वर में जवाब दिया, राजन इसका कारण बहुत ही सीधा-सा है। राजा ने उत्सुकता से उनकी तरफ देखा।

गुरु ने कहना जारी रखा, बात बहुत छोटी-सी है, पर आपने कभी इस पर गौर नहीं किया। 'बड़े' होने के अहंकार के कारण आप सीख नहीं पा रहे हैं। यह बड़प्पन का भाव ही आपके मन में सीखने का भाव उत्पन्न नहीं होने दे रहा । गुरु इतना कहकर रुक गए। उन्हें लगा कि राजा को कारण समझ में आ गया होगा।

लेकिन त्रिविक्रम अब भी गुरु की ओर देख रहे थे। इस पर गुरु ने अपनी बात आगे बढ़ाई, यह सही है कि आप एक राजा हैं। पद और प्रतिष्ठा में मुझ से बड़े हैं, परंतु यहां मेरा और आपका रिश्ता गुरु शिष्य का है। गुरु होने के नाते मेरा स्थान आपसे ऊँचा होना चाहिए, पर आप स्वयं ऊँचे सिंहासन पर बैठते हैं और मुझे नीचे आसन पर बिठाते हैं। यही कारण है कि आपको कोई शिक्षा नहीं मिल रही। आप राजा हैं, इसलिए मैं यह बात आपसे नहीं कह पा रहा था। त्रिविक्रम को अपनी भूल का एहसास हो गया।

- साभार अमर उजाला

साहित्य परिचय

योग फिलासफी और नवीन साधना

योग फिलासफी में समयानुसार नये-नये अन्वेषण होते रहे हैं । देश काल पर दृष्टि डालके इस योग विद्या के आचार्य इसमें सरलता देते आये हैं । ऐसी ही एक मोक्ष आत्मा अपने निजधाम से उतर के इस नर शरीर में आई और "समर्थ गुरु श्री महात्मा रामचन्द्र जी" के नाम से प्रसिद्ध हुई । इन महात्मा ने इसको इतना सरल बनाया कि नित्य-प्रति चंद मिनटों के ही अभ्यास से जिज्ञासु इतना ऊँचा उठ जाता है कि जिसको दूसरे योगी वर्षों में भी नहीं प्राप्त कर पाते । इस पुस्तक में इसी नवीन शैली पर प्रकाश डाला गया है ।

पुस्तक के तीन खण्ड हैं । प्रथम में 'योग' शब्द की विस्तृत व्याख्या है । मनोमय व विज्ञानमय कोशों में साधकों को क्या-क्या अवस्थायें आती हैं, समाधि के कितने भेद हैं और उनमें क्या-क्या अनुभव होते हैं यह सब खोल-खोल के बतलाया गया है । द्वितीय खण्ड योग की नवीन साधना और योग के इतिहास पर प्रकाश डालता है । तृतीय खण्ड में योग और मेस्मेरिज्म का भेद दिखाया है । अध्यात्म विद्या के मुमुक्षुओं को इसे बार-बार पढ़कर उस पर अमल करना चाहिए ।

पूजा तत्व

अध्यात्म एक सुदर विज्ञान है, जो भौतिक विज्ञान से मिलता जुलता तो अवश्य है, परन्तु यह है विज्ञान का उच्च शिखर । जो आगे की ओर बढ़ रहे हैं, वास्तव में वह आत्मा की ही ओर चल रहे हैं, ऐसे लोग उसे जल्दी ही प्राप्त करेंगे । जिनके अन्तर में कुरेद है, वह एक दिन अवश्य वहाँ तक पहुँच जायेंगे ।

तुम्हारे हृदय में ईश्वर है, और वही तुम भी हो । उस शान्त ईश्वर में तुम अपनी मनमानी कर रहे हो, उसी से दुःखी हो । तुम्हें यदि आनन्द लेना है तो उसमें कुछ कम्पन पैदा करो, उससे विनती करो, अपने अन्तःकरण के शान्त ईश्वर को अपनी ओर आकृष्ट करो, बस तुम्हारे दुःख दूर हो जायेंगे ।

पूजा यही है। पूजा में शब्द के द्वारा, भाव के द्वारा, संकेत और विचार के द्वारा अन्तर की बात प्रभु से कही जाती है। इसी पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। ✦✦

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्र मुजफ्फर पुर का भण्डारा

दिनांक	:	10 (सुबह से), 11 एवं 12 अप्रैल 2015
सत्संग स्थल	:	सिकन्दर पुर मैदान
सम्पर्क सूत्र	:	श्री श्याम चन्द्र सिन्हा
		मो. 09334912985

समाचार इधर-उधर के :-

एक अनार गुण हजार

अनार में अधिक मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट्स पाए जाते हैं जो शरीर से हानिकारक फ्री रेडिकल्स को दूर करने में सहायक होता है । यह एंटीऑक्सीडेंट्स का बैरीज और संतरे जैसे अन्य रसीले फलों और ग्रीन टी से भी अच्छा स्रोत है।

अनार दिल के लिए बहुत अच्छा होता है । इसके हर दाने में टैनिनस होते हैं जो दिल को बीमारियों से बचाते हैं । यह काड्रियक मसल्स के लिए भी फायदेमंद होता है । इसका नियमित सेवन कॉलेस्ट्रॉल जैसे हानिकारक तत्वों की मात्रा नियंत्रित रखता है । शरीर में लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण में सहायक होता है इसलिए एनिमिया जैसे रोगों में लाभकारी होता है ।

* कई बार गलत डाइट के कारण उम्र के साथ धमनियां सख्त हो जाती हैं । यह कंडीशन ब्लड प्रेशर को अनियमित भी कर सकती है । ऐसे में अनार का रस अत्यधिक फायदेमंद होता है । अनार का रस खून को तरल बनाए रखने में मददगार होता है और इसलिए खून के थक्के बनने से भी रोकता है ।

* अनार के रस की बजाए इसके दाने खाने से तमाम गुणों के साथ फाईबर भी मिलता है जो शरीर के लिए बहुत जरूरी होता है ।

* यह फल पूरी दुनिया में त्वचा की सुंदरता बढ़ाने के लिए प्रसिद्ध है । अनार खून साफ करके त्वचा की रौनक लौटाता है ।

* अनार में एन्टीइन्फ्लेमेट्री तत्व होते हैं। इसलिए यह गठिया के दर्द में काफी राहत पहुँचाता है।

* अनार से पोटेशियम जैसे मिनरल्स भी मिलते हैं जो शरीर का इलेक्ट्रोलाईट बैलेंस बनाए रखने में मददगार होते हैं। ✦✦

साभार-धीर साप्ताहिक

नमक से ज्यादा खतरनाक चीनी

नए अध्ययन से पता चला है कि सोडा ड्रिंक में नमक के बजाय चीनी ज्यादा खतरनाक होती है। ओपन हार्ट जर्नल में प्रकाशित इस अध्ययन के अनुसार हाई ब्लड प्रेशर, हार्ट डिजीज और स्ट्रोक की आशंका नमक के बजाय ज्यादा चीनी खाने पर हो सकती है । विशेषज्ञों का कहना है कि बढ़ती हार्ट डिजीज के मामलों पर काबू पाने के लिए चीनी में पाए जाने वाले पदार्थ फ्रक्टोस के नुकसान के बारे में जानना बेहद जरूरी है। अध्ययन के अनुसार नमक में पाए जाने वाले सोडियम के बजाये चीनी का हाई बीपी से अधिक संबंध है। तथ्य कहते हैं, शुगर और मोनोसेचुराइड फ्रक्टोस हाइपरटेंशन होने की बड़ी वजह बनते हैं ।

साभार- अमर उजाला

वर्ष : 82 [मार्च-2015] अंक : 08

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

❋ साधन के नियम ❋

1. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्य उद्देश्य है।

2. साधन प्रत्येक मास की **20-21** तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका अगले माह की **15** तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से सम्पर्क करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।

3. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।

4. लेखों को घटाने-बढ़ाने और छापने, न छापने का अधिकार सम्पादक का रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी नहीं होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।

5. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर साफ़-साफ़ लिखना चाहिए। उत्तर के लिए जबाबी कार्ड भेजना आवश्यक है।

6. साधन का वार्षिक शुल्क रुपये **150/=** है। एक प्रति का शुल्क रुपये **16/=** है। केवल विशेषांक का शुल्क रुपये **20/=** है। भारतवर्ष से बाहर दूसरे देशों में रहने वालों के लिए साधन का वार्षिक शुल्क रुपये **1400/=** है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।

7. दस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये **1350/** है और बीस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये **2500/** है।

8. साधन का वार्षिक शुल्क साधारण मनी-आर्डर, ई. एम. ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक (जो मथुरा में देय हो) द्वारा भेज सकते हैं, जो "साधन हिन्दी मन्थली" के नाम **813**, डैम्पियर नगर, मथुरा-**281001** को भेजा जाये।

9. सत्संग साहित्य जो आप मंगाना चाहते हैं उसका कुल मूल्य एवं डाकखर्च कार्यालय से पता कर मनी आर्डर ई.एम.ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजकर मंगाया जा सकता है।

Licence to Post without Prepayment: Licence No.-AGRA/WPP-01/2015-2017
"Registered" Postal Regd.No.MTR/28/15-17: R.N.I. No- 2358 / 57
Date of Publication:8th to 15th of every Month

साधन

ॐ

मथुरा

प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, मथुरा
प्रकाशक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, डैम्पियर नगर, मथुरा
मुद्रक : आलोक कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा

E-mail: sadhanhindimonthly@gmail.com, sadhanhindimonthly@yahoo.co.in
Website: www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
Ph.: 0565-3290790, Mob.: 09319680800